ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मई २०१४

वर्ष ४३ : अङ्क ७
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : बैसाख-ज्येष्ठ २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (अवैतनिक) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक: धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कुमार
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❑ वेदोपदेश २
- ❑ आम चुनाव ४
- ❑ सांख्यदर्शन.... ६
- ❑ इतिहास को १२
- ❑ सुख शान्ति.... १६
- ❑ हमारा पर्यावरण.... १९
- ❑ यजुर्वेद..... २४

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **सविता=ईश्वरः, सूर्यलोकश्च देवता।।** विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।।

कस्मै प्रयोजनाय स यज्ञः कर्तव्य इत्युपदिश्यते।।

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिए, यह उपदेश किया है।।

ओ३म् धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायं त्वोदानायं त्वा व्यानायं त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुंषे धां देवो वंः सविता हिरंण्यपाणिः प्रतिंगृभ्णात्वाच्छिंद्रेण पाणिना चक्षुंषे त्वा महीनां पयोंऽसि।। यजु० 1/२०।।

पदार्थः (धान्यम्) धातुमर्हं यत् यज्ञात् शुद्धम्, रोगानाशकेन स्वादिष्ठतमेन सुखकारकमन्नं तत्। **अत्र दधातेर्यत् नुट् च।।उ. 5।48।। अनने यत्प्रत्ययो नुडागमश्च (असि)** भवति। **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (धिनुहि)** धिनोति=प्रीणाति। **अत्र लडर्थे लोट् (देवान्)** विदुषो जीवानिन्द्रियाणि च **(प्राणाय)** प्रकृष्टमन्यते=जीव्यते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय **(त्वा)** तत् **(उदानाय)** स्फूर्तिहेतव ऊर्ध्वमन्यते=चेष्टयते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय **(त्वा)** तत्। **अत्र त्रिषु प्रथमार्थे मध्यमः (दीर्घाम्) विस्तृताम् (अनु)** पश्चादर्थे **(प्रसितिम्)** प्रकृष्टं सिनोति=बध्नात्यनया ताम् **(आयुषे)** पूर्णायुर्वर्धनेन सुखभोगाय **(धाम्)** दधामि। **अत्र छन्दसि लुङ्लङ्लिट् इति वर्तमाने लुङ लडभावश्च (देवः)** प्रकाशमानः प्रकाशहेतुर्वा **(वः)** अस्मानेतान् जगत्स्था स्थूलान् पदार्थांश्च **(सविता)** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यदातेश्वरः सूर्य्यलोको वा **(हिरण्यपाणिः)** हिरण्यस्यामृतस्य मोक्षस्य दानाय पाणिर्व्यवहारो यस्य सः। **अमृतहिरण्यम्।। श. 7।4।1।15।।** यद्वा हिरण्यं= प्रकाशार्थं ज्योतिः पाणिर्व्यवहारो यस्य सः **(प्रतिगृभ्णातु)** प्रतिगृह्णातु प्रतिगृहणाति वा। **अत्र हृग्रहोरिति हस्य भः। पक्षे लडर्थे लोट् च (अच्छिद्रेण)** निरन्तरेण व्यापनेन प्रकाशेन वा **(पाणिना)** स्तुतिसमूहेन **(महीनाम्)** महतीनां वाचां पृथिवीनां वा। **महीति वाङ्नामसु पठितम्।। निघं. 1।।11।। पृथिवी नामसु च। निघं. 1।।1।। (पयः)** अन्नं जलं च येन शुद्धम् **पय इत्युदकनामसु पठितम्।। निघं0 1।12। अयं मंत्रः श. 1।1।5।18-22। व्याख्यातः।।20।।**

सपदार्थान्वयः यदिदं यज्ञशोधितं धान्यं धातुमर्हं यद् यज्ञात् शुद्धम्, रोगनाशकेन स्वादिष्ठतमेन सुखदातकमन्नं तद् **(असि)=अस्ति, यच्च यज्ञशोधितं पयः,** अन्नं जलं च येन शुद्धम् **(असि)=अस्ति तद्**

देवान् विदुषो जीवानिन्द्रियाणि च **धिनुहि=धिनोति** धिनोति=पृणाति। **तस्माद्यथाऽहं (त्वा)=तत् प्राणाय** प्रकृष्टमन्यते=जीव्यते येन तस्मै जीवनधारणहेतवे बलाय **(त्वा)=** तद् उदानाय स्फूर्तिहेतव ऊर्ध्वमन्यते=चेष्ट्यते येन तस्मै उत्क्रमणपराक्रमहेतवे **(त्वा)**=**तद् व्यानाय** विविधमन्यते=व्याप्यते येन तस्मै सर्वेषां शुभगुणानां कर्मविद्याऽङ्गनां च व्याप्तिहेतवे **दीर्घां** विस्तृतां **प्रसितिं** पश्चात् प्रकृष्टं सिनोति=बध्नात्यनया ताम् **आयुषे** पूर्णाय्युर्वर्धनेन सुखभोगाय **(धाम्) = दधामि, तथैव यूयं सर्वमनुष्यास्तस्मै प्रयोजनायै तन्नित्यं धत।**

यथा योऽस्मान् हिरण्यपाणिः हिरण्यस्याऽमृतस्य=मोक्षस्य दानाय पाणिः=व्यवहारो यस्य सः, **देवः** प्रकाशमानः **सविता=जगदीश्वरः** सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्यदातेश्वरः **अच्छिद्रेण** निरन्तरेण व्यापनेन **पाणिना** स्तुतिसमूहेन महीनां महतीनां वाचां **चक्षुषे (प्रति अनु गृभ्णातु)=प्रत्यनुगृह्णातु=प्रकृष्टतयाऽनुगतं गृह्णाति, तथैव वयं तम्।**

यथा च हिरण्यपाणिः हरिण्यं=प्रकाशार्थं ज्योतिः, पाणि=व्यवहारो यस्य सः, **देवः** प्रकाश हेतुः, **सविता**=सूर्यलोको महीनां पृथिवीनां **चक्षुषेयच्छिद्रेण** प्रकाशनेन **पाणिना पयः** अन्नं जलं च येन शुद्धं **गृहीत्वा धान्यं पोषयति तं वयमपि अच्छिद्रेण पाणिना महीनां** महतीनां वाचां **चक्षुषि प्रतिगृह्णीमः।।20।।**

भाषार्थ : जो यह यज्ञ से शुद्ध किया हुआ **(धान्यम्)** पुष्टि कारक, रोगनाशक एवं स्वादिष्ठतम् होने से सुखकारक अन्न **(असि)** है, और जो यज्ञ से शुद्ध किया हुआ **(पयः)** शुद्ध अन्न और जल **(असि)** है वह **(देवान्)** विद्वान् लोगों और इन्द्रियों को **(धिनुहि)** तृप्त करता है। इसलिए जैसे मैं **(त्वा)** उस अन्न और जल को **(प्राणाय)** जीवन धारण के निमित्त बल के लिए और **(त्वा)** उसे **(उदानाय)** स्फूर्ति के हेतु तथा उत्क्रमण एवं पराक्रम के लिए और **(त्वा)** उसे **(व्यानाय)** सब शुभगुणों कर्म तथा विद्याङ्गों में व्याप्त होने के लिए **(दीर्घाम्)** दीर्घ **(प्रसितिम्)** दृढ़ **(आयुषे)** पूर्ण आयु की वृद्धि से सुख भोग के लिए **(धाम्)** धारण करता हूं वैसे ही तुम सब लोग उक्त प्रयोजन के लिए इसे नित्य धारण करो।

जैसे हमें जो **(हिरण्यपाणिः)** हिरण्य अर्थात् मोक्ष को देने के लिए जिसका पाणि = सब व्यवहार है वह **(देवः)** प्रकाशमान **(सविता)** सब जगत् का उत्पादक, सकल ऐश्वर्य का दाता जगदीश्वर **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर व्याप्त **(पाणिना)** स्तुक्तियों से **(महीनाम्)** महान् वाणियों के **(चक्षुषे)** उपदेश और प्रकाश से **(प्रत्यनुगृभ्णातु)** अत्यन्त अनुग्रह करता है वैसे हम लोग भी उसकी स्तुति आदि किया करें।

और जैसे - **(हिरण्यपाणिः)** प्रकाश के लिए ज्योतिर्मय व्यवहार वाला **(देवः)** प्रकाश का निमित्त **(सविता)** सूर्य लोक **(महीनाम्)** पृथिवियों को प्रकाशित करने के लिए **(अच्छिद्रेण)** अपने प्रकाश रूप **(पाणिना)** व्यवहार से **(पयः)** शुद्ध जल ग्रहण करके धान्य को पुष्ट करता है उसे हम भी **(अच्छिद्रेण)** निरन्तर **(पाणिना)** स्तुतिरूप व्यवहार से **(महीनाम्)** महान् वाणियों के **(चक्षुषि)** प्रकाश में **(प्रतिगृह्णीमः)** ग्रहण करें।।1।20।।

भावार्थः अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ये यज्ञेन शोधिता अन्न जलवाय्यवादयः पदार्था भवन्ति, ते सर्वेषां शुद्धये,

शेष पृष्ठ 11 पर

आम चुनाव
(धर्मपाल आर्य, २ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७)

देश आम चुनावों के दौर से गुजर रहा है। हर राजनैतिक दल अपनी-अपनी नीति-रणपीति तय करने में लगा हुआ है। सभी हार की स्थिति में और जीत की स्थिति में अपनी-अपनी भूमिका की समीक्षा करने में लगे हुए हैं, सारे दल तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़कर एक व्यक्ति को निशाना बनाने के ओछे से ओछे हथकण्डे अपना रहे हैं। सत्ता विरोधी लहर 1977 में भी थी लेकिन राजनीतिक शालीनता मौजूद थी। सत्ता विरोधी लहर 1989 में भी थी लेकिन राजनीतिक शालीनता शेष थी। सत्ता विरोधी पी.वी. नरसिम्हा राव के समय में भी थी परन्तु राजनीति शालीनता तब भी कायम थी। सत्ता विरोधी वातावरण तो अभी भी बना हुआ है किन्तु इस वातावरण में राजनीतिक शालीनता बिल्कुल समाप्त हो गयी है। यह देश एक जाति विशेष, एक वंश विशेष, एक खानदान विशेष तथा एक परिवार विशेष की बापौती नहीं है। अपितु यह देश उन सबका है, जो इसमें रहते हैं। यह देश उन सबका है, जो देश के सामने आने वाली चुनौतियों को अपनी चुनौती समझते हैं। यह देश उन सबका है, जो देश की समस्याओं को अपनी समस्या समझते हैं। यह देश उन सबका है जो इस देश की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझते हैं। यह देश उन सबका है, जो इसके उत्थान को अपना उत्थान समझते हैं। यह देश उन सबका है, जो इसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख, उसके हानि-लाभ को अपना हानि-लाभ तथा इसकी जीत-हार को अपनी जीत-हार मानते हैं। यह देश उन सबका है जो इसकी सार्वकालिक, सार्वभौमिक सार्वजनिक सांस्कृतिक परम्परा का आदर करते हैं, यह देश उन सबका है, जो इसकी एकता को, अखण्डता को, सत्य को, धर्म को, न्याय को, मानवता को, पारस्परिक सौहार्द को, सामाजिक, सामञ्जस्य को, समानता को, दया और उदारता को सुदृढ़ करने के लिए राजनीति का प्रयोग करते हैं। यह देश उनका नहीं है जो राजनीति का प्रयोग एक जाति (प्रचलित भाषा में) को दूसरी जाति से, एक प्रदेश को दूसरे प्रदेश से, एक भाषा को दूसरी भाषा से, एक वर्ग को दूसरे वर्ग से लड़ाने के लिए करते हैं। यह देश उनका भी नहीं है जो एक वर्ग को खुश रखने के लिए दूसरे वर्ग को नीचा दिखाने के लिए संविधान में संशोधन करने की ओछी राजनीति करते हैं। यह देश उनका भी नहीं है, जिन्हें इसकी सांस्कृतिक विरासत से बदबू आती है। इस देश की और इस देश की राजनीति की सबसे बड़ी बदनसीबी यही है कि इसमें ऐसे राजनेता हैं, जिन्हें न तो देश की सांस्कृतिक परम्परा का ज्ञान है और न जिनमें राजनीतिक शालीनता है। इनके बयान भारतीय राजनीति को जहां शर्मसार करते हैं वहीं सामाजिक शालीनता तथा सद्भाव को ठेस पहुंचाने का काम कर रहे हैं। आलोचना, प्रत्यालोचना तो पहले भी होती थी लेकिन उसमें राजनीतिक शालीनता होती थी, आरोप प्रत्यारोप पहले भी लगते थे राजनीतिक मर्यादा के साथ आरोप - प्रत्यारोप और आलोचना - प्रत्यालोचना का इतना घटिया दौर मैंने तो कम से कम नहीं देखा। आप ''आम आदमी पार्टी'' तो दिल्ली को लगभग 49 दिन में कोरे आश्वासनों का झुनझुना थमाकर और अपनी नाकामी को छिपाकर चल पड़े अलख जगाने केन्द्र की सत्ता हासिल करने के लिए। पहले कसम खाते हैं कि कांग्रेस-बीजेपी से न समर्थन लेंगे और न ही इन दोनों में से किसी को समर्थन देंगे लेकिन बाद में एक पार्टी के समर्थन से सरकार चलाई। भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के आपके दावे की पोल खोलने के लिए केवल एक ही प्रसंग काफी है। हरियाणा में एक निडर, ईमानदार, आई.ए.एस. अधिकारी श्री अशोक खेमका ने राबर्ट के अनियमित भूमि सौदों को न केवल निरस्त किया, अपितु इसमें हुई

अनियमितताओं की जांच के आदेश दिये लेकिन सरकार ने दूसरे जिस अधिकारी को जांच का काम सौंपा तो उन महोदय ने श्री अशोक खेमका के फैसलों को ही पलट दिया ऐसे अधिकारी श्री युद्धवीर सिंह ख्यालिया को आपने लोकसभा का टिकट देकर अपनी पार्टी का प्रत्याशी बनाया। भ्रष्टाचार पर जैसी झाडू इन्होंने दिल्ली में चलायी वैसी झाडू यदि देश में चला दी फिर तो हो गया देश का कल्याण। लगभग 67 साल इस देश की आजाद हुए हो गये लेकिन कई मामले में आजाद भारत की हालत गुलाम भारत से ज्यादा खराब है। तो सवाल उठता है कि इतने वर्षों में हमने क्या किया? जिस पार्टी ने सबसे ज्यादा इस देश पर राज किया; जिस पार्टी ने एक खानदान विशेष का नकाब पहन कर वोट मांगे, उस पार्टी ने सत्ता में रहकर क्या दिया? क्या इस देश में अब केवल तथाकथित साम्प्रदायिकत ही मुद्दा है? गरीबी, भुखमरी, निरक्षरता, बेरोजगारी, आदि बुनियादी मुद्दों को सुझाने की ओर हमारे सत्ताधीशों का कोई ध्यान नहीं। वोटर इनके सत्ता तक पहुंचने के मात्र साधन भर हैं। जैसे ही चुनाव आते हैं मुख्य मुद्दों से मतदाताओं का ध्यान हटाकर एक व्यक्ति विशेष को लक्ष्य बनाकर, उसका एक वर्ग विशेष को भय दिखलाकर सत्ता-प्राप्ति का अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इनसे (राजनीतिक दलों से) कोई पूछे कि जैसे आप सब नरेन्द्र मोदी को सत्ता से बाहर रखने के लिए योजनाबद्ध तरीके से एकजुट हो रहे हो ऐसी गुटबन्दी, ऐसी एकता आपकी राष्ट्रीय मुद्दों को सुलझाने में, पाकिस्तान या चीन को जवाब देने में क्यों नहीं होती? इनसे कोई पूछे कि तथाकथित साम्प्रदायिकता पर तो आप सब गोलबन्द हो जाते हो लेकिन देश में व्यापत अशिक्षा, अन्याय, भुखमरी, बेरोजगारी, गरीबी जैसे ज्वलन्त मुद्दों को सुलझाने के लिए आप सबकी एकता क्यों नहीं होती? सपा क्या, बसपा क्या, कांग्रेस क्या, माकपा क्या, भाकपा क्या, आप क्या, क्षेत्रीय दल क्या इन सबका एकमात्र लक्ष्य है कि मोदी और तथाकथित साम्प्रदायिकता का जोरदार विरोध। पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर किसी व्यक्ति या दल विशेष पर अनर्गल आरोप लगाना इसे राजनीतिक भाषा में राजनीतिक विद्वेष कहते हैं इस सन्दर्भ में मैं किसी कवि की निम्न पंक्तियां उद्धृत करना चाहूँगा-

जिनको औरों के दामन में दाग दिखाई देते हैं।
अपने दागी दामन भी बेदाग दिखाई देते हैं।
जब शातिर के सिर पर सजता हमदर्दी का सेहरा है।
ये कूटनीति की फितरत है यह चालाकी का चेहरा है।

देश की संस्कृति, देश का सामाजिक सद्भाव, देश की सीमायें किस प्रकार सुदृढ़ हों इस प्रकार के मुद्दों से इनका कोई सरोकार नहीं हैं यदि कोई इन मुद्दों पर बात करता है तो इन तथाकथित धर्मनिरेक्षता का नकाब ओढ़े राजनीतिक दलों की नजरों में वो ही साम्प्रदायिक है। जिस देश के राजनीतिक दलों की सोच जितनी ऊँची होगी, जितनी मजबूत होगी वो देश उतना ही ऊँचा और मजबूत बनेगा। इस देश का दुर्भाग्य यही है कि इस देश के कुछ राजनीतिक दलों की सोच व्यक्ति विशेष, खानदान विशेष तथा एक वर्ग विशेष तक ही सीमित है। इससे आगे सोचने की यदि किसी ने हिम्मत की तो वो हाशिए पर धकेल दिया गया या फिर उसे पार्टी बाहर का रास्ता दिखा दिया गया। इस प्रकार की सोच से व्यक्ति विशेष, खानदान, विशेष, तथा वर्ग विशेष का उत्थान तो सम्भव है, लेकिन यह विकृत सोच राष्ट्र को विनाश के कगार पर, विद्रोह के कगार पर, अराजकता के कगार पर, अशान्ति के कगार पर धकेल देगी। इसीलिए वेद का हम सबको आदेश है कि-

"मा वः स्तेन ईशतःमाघशंस।"

अर्थात् हे मनुष्यों, आप पर कभी भी चोरों का, छलियों का, कपटियों का, हिंसकों का शासन न हो। अर्थात् हम कभी पापी, हिंसक, पक्षपाती, चोर और कपटी राजा का चुनाव न करें।

❑❑

साङ्ख्यदर्शन का एक संक्षिप्त परिचय

प्राचीन भारत के दार्शनिक विचार के प्रणेताओंषड्दर्शनों में से एक है साङ्ख्यदर्शन। अन्य दर्शनों के समान, दर्शनकार कपिल महर्षिइस ग्रन्थ का लक्ष्य मोक्ष बताते हैं। योग, न्याय और वैशेषिक दर्शनों के अनेक सिद्धान्त इस दर्शन में प्रायः उन्ही शब्दों में पाए जाते हैं। इससे इन सबका मतैक्य स्पष्ट होता है। साङ्ख्य में, मोक्ष को लक्षित करके, प्रकृति, जीव व ईश्वर के गुण, कर्म व सम्बन्ध पर विस्तृत विचार किया गया है। निष्कर्षों को सिद्ध करने के लिए न्याय में बताई तर्क करने की पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसलिए न्यायदर्शन के विद्यार्थियों को इस दर्शन में तर्क के प्रकारों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।इस लेख में मैं साङ्ख्यका एक संक्षिप्त परिचय दे रही हूं और उसकी कुछ प्रमुख मान्याताओं पर प्रकाश डाल रही हूं।

साङ्ख्य का अर्थ यहां 'सङ्ख्या से सम्बद्ध' न होकर, 'सम्यक् ख्यानम्' अर्थात् 'विशेष विचार' है। इसके रचयिता महर्षि कपिल हैं। जबकि ग्रन्थ में तो इनके विषय में कुछ नहीं दिया है, परन्तु पुराणों में इनका और इस ग्रन्थ का कुछ वर्णन मिलता है। इससे इनका काल तो पुराणों से भी प्राचीन, अर्थात् अति-प्राचीन स्थापित होता है। दर्शन में छः अध्याय हैं। इस कारण यह षडध्यायी के नाम से भी प्रख्यात है। उदयवीरशास्त्रीजी ने, अपने गहन अन्वेषण से, ग्रन्थ के ७६ सूत्रों को प्रक्षिप्त बताया है। उनको छोड़ ग्रन्थ में ४५१ सूत्र हैं। इसके मुख्य विषय हैं – सृष्टि के कारण, जीव का बन्धन औरमोक्ष-प्राप्ति के उपाय।

१) सर्वप्रथम तो ग्रन्थ मोक्ष के ऊपर ही विचार करता है कि क्यों हम मोक्ष की इच्छा भी करें। श्रुति के प्रमाण से इस पद के सर्वोत्कृष्ट होने से[1], जिसमें दुःख का सर्वथा अभाव होता है[2], इसे वाञ्छित बताया गया है। जहां मोक्ष में दुःख का अत्यन्त अभाव होता है[3], वहीं वहां किसी विशेष आनन्द की प्राप्ति को मानना कपिल ने मूर्खता बताया है[4]। उनके अनुसार, मुक्ति केवल कठिनाइयों की समाप्ति है, और कुछ भी नहीं[5]। वस्तुतः, दुःख का अभाव ही बहुत आनन्दपूर्ण होता है! मोक्ष में आत्मा को कृत्कृत्यता प्राप्त हो जाती है। इसलिए इस परम पद के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए[6]।
परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर, जैसे प्रकृति जीव के लिए 'नाचना' बन्द कर देती है[7][8], और प्रधान, अर्थात् मूल प्रकृति, की सृष्टि उसके लिए बन्द हो जाती है। जीव जीता रहता है, और उसके पूर्व कर्मों का फल उसे मरण-पर्यन्त प्राप्त होता रहता है[9]। परन्तु उसके वर्तमान कर्म निष्काम हो जाते हैं और फल देना बन्द कर देते हैं। उसका शरीर चक्र के समान बस चलता रहता है। इसको **जीवन्मुक्त दशा** कहते है[10]। मोक्ष में न तो किसी स्वर्ग आदि विशेष स्थान की प्राप्ति होती है, न ही जीवात्मा-रूपी एक भाग ब्रह्म-रूपी भागी से जाकरजुड़ जाता है[11]। यह अद्वैतवाद के मुख्य सिद्धान्त का खण्डन है।

२) मोक्ष के उपदेश से यह भी सिद्ध होता है कि जीवात्मा स्वभाव से बद्ध नहीं है[12], क्योंकि स्वभाव का कभी नाश नहीं होता[13]। प्रत्युत, जीवात्मा स्वभाव से मुक्त ही है। यही नहीं नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाली है[14]।अन्यत्र कपिल दोहराते हैं कि **असङ्गोऽयं पुरुष इति ॥ १।१५ ॥** अर्थात्जीवात्मा असङ्ग है, उसका प्रकृति से संयोग ऊपरी है, और वह शरीर आदि से भिन्न है[15]। वस्तुतः वह प्रकृति से चिपकता नहीं है। अहङ्कार व बुद्धि से जुड़ता अवश्य है, परन्तु उनसे भी सूक्ष्म होने के कारण, उनसे अलग ही रहता है। इस 'सङ्ग' को ऐसा माना जा सकता है, जैसे पशु रस्सी से बन्धा होता है[16]।
कपिल आत्मा को निर्गुण बताते हैं[17], जो प्रकृति से योग होने पर, अविवेक के कारण, अपने में प्रकृति के गुण देखने लगती है[18]।

३) तर्कों और प्रमाणों द्वारा साङ्ख्य ने पूर्णतया स्थापित कर दिया कि मूल प्रकृति ही संसार का उपादान कारण है[19]। क्या ईश्वर या जीव इसका उपादान कारण हो सकते हैं? – इस पर विचार करके इन्हें असिद्ध ठहराया गया है। **"ईश्वरासिद्धेः (१।५७)"**– इस प्रसिद्ध सूत्र से उन्होंने बताया कि ईश्वर को जगत् के उपादान रूप में सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि ईश्वर को बद्ध मानें या मुक्त, या अन्य किसी अवस्था में, अचेतन प्रकृति में वे नहीं बदल सकते[20]। जीव के परिछिन्न होने से, वह भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

का उपादान कारण नहीं हो सकता[21] ।

मूल प्रकृति में सत्त्व, रज और तम (जिनको कि प्रकृति के पृथक्-पृथक् तत्त्व ही मानना पड़ेगा[22]) का बराबर में होना बताया है । जब इनकीमात्राओं में भेद उत्पन्न होता है, तो अन्य विकार उत्पन्न होते हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है – महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय व मन, पञ्चस्थूलभूत । जीवात्मा को मिलाकर ये २५ तत्त्व बनते हैं[23] जिनका कि अनुमान से ज्ञान किया जा सकता है (देखिए मेरा पूर्व लेख –**सृष्टि-तत्त्वों का अनुमान से ज्ञान**) ।

४) परमात्मा के विषय में साङ्ख्य कहता है – ईश्वर सर्ववित् और सर्वकर्ता है[24] । उसमें आनन्द है जो कि जीवात्मा में नहीं पाया जाता[25] ।

५) साङ्ख्यने तीन प्रमाण गिनाए हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द । इस प्रकार, न्याय में दिए चार प्रमाणों के उपमान प्रमाण को कपिल ने अनुमान के अन्तर्गत ही मान लिया है । प्रत्यक्ष के अन्तर्गत उन्होंने योगियों के इन्द्रियातीतज्ञान को भी माना है[26] । न्यायदर्शन में केवल इन्द्रियों से उपलब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष माना गया है । परन्तु कपिल ने किसी भी विषय से जुड़ कर प्राप्त ज्ञान को प्रत्यक्ष माना है[27] ।

अनुमान के लिए कपिल ने एक सुन्दर परिभाषा दी है –प्रतिबन्धको देखकर जो प्रतिबद्ध का अनुमान लगता है[28] । विमान की ध्वनि विमान से प्रतिबद्ध है । इसलिए उसे सुनकर, विमान का अनुमान होता है ।

शब्द की परिभाषा तो उन्होंने आप्तोदेश ही माना है[29], परन्तु शब्द बोध कैसे कराता है, उसका उन्होंने एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है –जिस प्रकार लोहा तपने पर अग्नि-रूप हो जाता है, उसी प्रकार शब्द अन्तःकरण को अपने विषय से जैसे उज्ज्वलित कर देता है [30]।

६) वेदों पर बृहत् चर्चा करके, वेदों को अपौरुषेय और स्वतःप्रमाण स्थापित किया गया है[31] ।उनकी वेदों पर श्रद्धा इस वाक्य से स्पष्ट होती है कि, प्रत्यक्ष में वेद-वचन से कुछ विपरीत दिखने पर भी, श्रुति ही को सही मानना चाहिए[32] ।

७) साङ्ख्य का एक प्रमुखसिद्धान्त (axiom) है कि किसी भी वस्तु की उत्पत्ति अवस्तु = शून्य से नहीं हो सकती –**नावस्तुनावस्तुसिद्धिः** ॥ १।४३ ॥**नासदुत्पादोनृशृङ्गवत्** ॥ १।७९ ॥ इस सिद्धान्त को'**<u>सत्कार्यवाद</u>**' कहा जाता है ।इसलिए जगत् मिथ्या नहीं है, परन्तु सत्य है, सत्तावाला है । सत्कार्यवाद को इस सूत्र से भी माना जाता है –**उभयथाप्यसत्करत्वम्** ॥१।५९॥ - अर्थात् दोनों ही मुक्त या बद्ध अवस्थाओं में ईश्वर 'सत्करत्वम्' = अचेतन जगत् का उपादान कारण नहीं हो सकता ।

इसी से सम्बद्ध एक वाक्य है –**मूलेमूलाभावादमूलंमूलम्** ॥ १।३२ ॥ - मूल का मूल ढूढना व्यर्थ है क्योंकि जिसका कोई मूल = कारण न हो, उसी को मूल कहा जाता है । इससे कपिल ने अनावस्था दोष को दर्शाया है । प्रकृति के मूल में एक ही तत्त्व हो सकता है, वह अनन्तता तक विकृत नहीं हो सकती ।

८) साङ्ख्य एक **<u>'उपादान नियम'</u>** का प्रतिपादन करता है[33] कि जिसमें जैसी शक्ति है, वह वैसे ही कार्य उत्पन्न कर सकता है[34] । जैसे, हम देखते हैं कि पीपल के पेड़ से पीपल का पेड़ ही उत्पन्न हो सकता है, अशोक का नहीं या मनुष्य को नहीं । इसीलिए असत् से सत् नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि यदि ऐसा हो सकता तो सब काल में और सब स्थान में कुछ भी उत्पन्न हो सकता[35]। इस प्रकार यह नियम सत्कार्यवाद का ही एक दूसरा रूप है । इस नियम से कार्य से कारण का अनुमान होता है, क्योंकि कार्य पूरी तरह कारण के गुण नहीं त्यागता[36] ।

९) साङ्ख्य का अन्य एक सिद्धान्त है कि कोई भी परिणाम निरर्थक नहीं है । फिर, क्योंकि निर्जीव प्रकृति के परिणाम उसके लिए तो हुए नहीं हैं, और न ही परमेश्वर उनका भोग करता है । इसलिए यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डजीवात्मा के लिए ही उत्पन्न हुआ है[37]।

१०)कार्य और कारण में भेद बताने के लिए कपिल कहते हैं कि कार्य वह होता है, जिसमें ये गुण होते हैं[38] -

क) हेतुमत्– उसका कारण विद्यमान होता है। मूल कारण का कारण नहीं होता, जैसे ऊपर कहा गया।

ख) अनित्य– क्योंकि उसका आदि होता है, इसलिए वह अन्त वाला भी होता है। मूल कारण अनन्त होता है क्योंकि, अन्त में, कार्य अपने कारणों में बदल जाता है, उसका सर्वथा नाश नहीं होता[39]। यह भी सत्कार्यवाद के अन्तर्गत समझना चाहिए, क्योंकि जैसे असत् से सत् नहीं बनता, वैसे ही सत् कभी भी असत् नहीं हो सकता।

ग) सक्रिय– कार्य में क्रिया होती है क्योंकि वह सीमित परिमाण का होता है, जबकि मूल कारण में क्रिया के लिए आवश्यक आकाश (=अवकाश) नहीं होता। क्योंकि आकाश कार्य तो है, परन्तु क्रियावान् नहीं, इसलिए मानना पड़ेगा कि यहां स्थूलभूतों से उत्पन्न कार्यों के विषय में ही कहा गया है, उनसे पूर्व कहे महत्, अहंकार, आकाश, आदि पर यह लक्षण नहीं घटता।

घ) अनेक–जिन कारणों के संयोग से एक कार्य उत्पन्न होता है, इन्हीं कारणों के पुनः संयुक्त होने से, उसका जैसा एक अन्य भी बन सकता है - और बनता है ! सो, कार्य अनेक होते हैं। पुनः आकाश और उससे पूर्व के कार्यों पर यह नहीं घटता।

ङ) आश्रित– कार्य अपने कारणों पर आश्रित होता है।

११)जीव के बन्धन पर बहुत तर्क करने के बाद, यह स्थापित किया जाता है, कि कर्म जीव के बन्धन का कारण नहीं हैं, क्योंकि कर्म अन्य वस्तु (शरीर/प्रकृति) के धर्म हैं[40]। यह बहुत ही विचित्र वाक्य है ! हम तो सुनते आए हैं कि जीव अपनेकर्मानुसार दुःख-सुख का भोग करते हैं। और साङ्ख्य इस तथ्य को भी मानता हुआ दिखाई देता है[41]। तथापि जहां एक ओर जीव कर्म का कर्ता होता है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति, विशेषकर अहङ्कार, उससे वह कर्म करवाता है[42] (विस्तृत विवरण के लिए, मेरे पिछले मास के लेख, 'कर्ता कौन' को पढ़िए)।

१२)प्रधानमें अविवेक को जन्म-रूपी बन्धनका कारणदर्शाया गया है[43]। मूल प्रकृति में अविवेक, अर्थात् शरीर और अन्य भोगों के प्रति राग-द्वेष[44], के कारण ही आत्मा बन्धन में आता है[45]। अतः, इस अविवेक को दूर करने से मोक्ष-प्राप्ति होती है और मोक्ष के बाद पुनः जन्म नहीं होता[46]। पुनरावृत्ति मानने में दोष भी हैं, ये भी उन्होंने दर्शाया है (६।१८-१९)।

तथापि, इस वचन को अन्य दो वचनों के परिपेक्ष में समझना चाहिए, जहां एक कहता है कि अनादि काल से आजतक सब आत्माओं की मुक्ति होने से संसार का अभाव नहीं हुआ है, इसलिए भविष्य में भी नहीं होगा[47]। दूसरा वचन कहता है कि जैसा इस काल में नहीं है, वैसे ही सारे कालों में संसार का अत्यन्त उच्छेद मानना युक्तियुक्त नहीं है[48]। यह तभी सम्भव है जब मुक्तात्माएं पुनर्जन्म लें, नहीं तो एक समय ऐसा होना निश्चित है जब सभी आत्माएं मुक्त हो जाएंगी। ऋषि दयानन्द के उपदेशानुसार हमें 'अनावृत्ति' से 'लम्बे काल तक के लिए' ही समझना चाहिए।

इस अविवेक के कारण हम इस शरीर को अपना रूप समझने लगते हैं। इसके निवारण के लिए विवेक-ख्याति में यज्ञ, आदि, परोपकार-कर्म या बौद्धिक ज्ञान या युक्तियां कारण नहीं होते[49], अपितु परमात्मा का साक्षात्कार ही कारण है[50]। यह पूर्णतया वेद के कथन के अनुसार है –**तमेवविदित्वातिमृत्युमेति, नान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय ॥ यजु० ३१।१८ ॥** साक्षात्कार करने का मार्ग, योगदर्शनानुसार, कपिल ने ध्यान, धारणा, समाधि, अभ्यास और वैराग्य, आदि, के द्वारा चित्त की वृत्तियों के निरोध से बताया है[51]। कुछ सूत्र तो योगदर्शन से ही उद्धृत लगते हैं ! परन्तु कपिल ने एक नया उपाय भी बताया है – यथार्थ को ढूढतेजाओ, और "मैं यह नहीं हूं, मैं यह नहीं हूं" – ऐसा सोचते हुए भोगों को त्यागते जाओ[52]। जो

लोग इस विवेक-ख्याति से अन्य किसी मार्ग से परमात्मा की प्राप्ति बताते हैं, उनको कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती[53]।

शरीर के अभाव में यह विवेक कैसे उत्पन्न होता है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। कपिल के अनुसार तो मोक्ष से पुनरागमन नहीं होता, परन्तु यदि हम यह माने कि मोक्ष विवेक-ख्याति हो जाने पर होता है, और मोक्ष से इस संसार में पुनरागमन होता है, तो स्पष्टतः यह अविवेक परमात्मा ही हममें उत्पन्न करते हैं (इसका कुछ संकेत उपर्युक्त बिन्दु २ पर १।१९ सूत्र से भी प्राप्त होता है, जहां योग का कारण परमात्मा को ही माना जा सकता है)। इसीलिए उसका निवारण भी अन्ततः उनके ही हाथ में है!

१३)कर्म के अनुसार जीव को योनि और भोग प्राप्त होते हैं[54]। पूरी सृष्टि की विचित्रता ही कर्मों की विचित्रता के कारण है – विभिन्न आत्माओं को विभिन्न भोग प्राप्त कराने के लिए[55]।इन असंख्य भोगों से धर्माधर्म की भी सिद्धि मानी गई है[56]। यदि धर्माधर्म न होते तो इतने सारे प्रकार के भोग बनाने की आवश्यकता ही क्या थी ?! ये धर्म वास्तव में अन्तःकरण के धर्म हैं, और प्रकृति के गुणों से ही जनित हैं[57]। इन गुणों के अनुसार ही हमारा व्यक्तित्व होता है –सात्त्विकजनों में प्रीति की अधिकता, राजसिक में अप्रीति और तामसिक में विषाद पाया जाता है[58]। इस प्रकार ऊंची योनियों में सत्त्व गुण की मात्रा अधिक होती है, नीची में तम की, और बीच वालियों में रज की[59]। शरीर के कारण ही हमें सुख-दुःख की संवेदना होती है[60]। शरीर के सुख-दुःख में हम अपने को हुए सुख-दुःख का अभिमान करते हैं[61]।

१४)मोक्षार्थी के लिए सांसारिक सुख भी दुःख तुल्य होता है[62]।

१५)हमारे कर्तव्य कर्म वे हैं, जो हमारे आश्रम के लिए विहित हैं[63]।

१६)जीवों का अनेक होना भी स्थापित किया गया है[64]और अद्वैतवाद का कड़ाखण्डन किया गया है[65]। जगत् मिथ्या नहीं हो सकता, इसके लिए तर्क दिए गए हैं[66]।

१७)आजकल के वैज्ञानिक जो गणित के बल पर दृष्ट को असत्य स्थापित करने की चेष्टा करते हैं (जैसे Quantum Physics के अनुसार एक अणु एक समय में दो स्थानों पर, या उनमें से किसी एक स्थान पर हो सकता है, जिसके कारण दर्पण में आपका प्रतिबिम्ब क्षण-क्षण बदलता रहना चाहिए), उनके लिए कपिल कहते हैं –जो प्रमाण से दृष्ट है, उसका कल्पना से विरोध नहीं हो सकता[67]।

क्योंकि साङ्ख्य में ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता को स्पष्टतया सिद्ध किया गया है, और माया जैसे किसी असत् पदार्थ से इस संसार की उत्पत्ति का खण्डन किया गया है, इसलिए यह दर्शन वेदान्तियों को सदा खटकता रहा है। **"ईश्वरासिद्धेः (१।५७)"** सूत्र को लेकर इसमें अनीश्वरवाद थोपने का प्रयास किया गया है। सूत्र के वास्तविक अर्थ और ईश्वर-परक सूत्रों की अवहेलना कि गई है। वस्तुतः, यह दर्शन सृष्टि की अनेक पहेलियों को तर्कों-सहित समझाता है। इसलिए यह प्रत्येक आत्म-चिन्तन करने वाले के लिए गम्भीरता से पढ़ने योग्य है। इसके तर्कों को समझकर, उसके निष्कर्षों का प्रचार करने योग्य है।

उत्तरानेरूर्कर
९८४५० ५८३१०.

[1]उत्कर्षादपिमोक्षस्यसर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥१।५॥
[2]विवेकान्निःशेषदुःखनिवृतौकृतकृत्यतानेतरात् ॥३।८४॥
[3]अत्यन्तदुःखनिवृत्त्याकृतकृत्यता ॥६।५॥
[4]दुःखनिवृत्तेर्गौणः ॥ विमुक्तिप्रशंसामन्दानाम् ॥५।६३-४॥ नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ॥५।७०॥
[5]मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्नपरः ॥६।२०॥
[6]अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥१।१॥
[7]

[8]नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापिनिवृत्तोश्चारिताथ्र्यात् ॥३।६९॥
[9]बाधितानुवृत्यामध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ॥३।७७॥ संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ॥३।८३॥
[10]चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥३।८२॥ जीवन्मुक्तश्च ॥३।७८॥
[11]न देशादिलाभोऽपि ॥ न भागियोगोभागस्य ॥५।७५-६॥
[12]न स्वभावतोबद्धस्यमोक्षसाधनोपदेशविधिः ॥१।७॥
[13]स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ॥१।८॥
[14]न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्यतद्योगस्तद्योगादृते ॥ १।१९ ॥
[15]शरीरादिव्यतिरिक्तःपुमान् ॥१।१०४॥
[16]प्रकृतेराञ्जस्यात्ससङ्गत्वात्पशुवत् ॥३।७२॥
[17][17]निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुतेः ॥६।१०॥निर्गुणत्वात्तदसम्भवादहङ्कारधर्माह्येते ॥६।६२॥
[18]परधर्मत्वेऽपितत्सिद्धिरविवेकात् ॥६।११॥ निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात् ॥६।२७॥
[19]प्रकृतेराद्योपादानतान्येषांकार्यत्वश्रुतेः ॥६।३२॥
[20]मुक्तबद्ध्योरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः ॥ उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥१।५८-९॥
[21]परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥१।४१॥
[22]सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वंतद्रूपत्वात् ॥६।३९॥
[23]सत्त्वरजस्तमसांसाम्यावस्थाप्रकृतिःप्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियंतन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥१।२६॥
[24]स हिसर्ववित्सर्वकर्ता ॥ ईदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा ॥ ३।५६-५७ ॥
[25]नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वेद्वयोर्भेदात् ॥५।६२॥
[26]योगीनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्नदोषः ॥१।५५॥
[27]यत्सम्बद्धंसत्तदाकारोल्लेखिविज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ॥१।५४॥
[28]प्रतिबन्धदृशःप्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥१।६५॥
[29]आप्तोदेशःशब्दः ॥१।६६॥
[30]अन्तःकरणस्यतदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥१।६४॥
[31]न पौरुषेयत्वंतत्कर्तुःपुरुषस्याभावात् ॥५।४६॥ निजशक्त्यभिव्यक्तेःस्वतःप्रामाण्यम् ॥५।५१॥
[32]श्रुत्यासिद्धस्यनापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ॥१।११२॥
[33]उपादाननियमात् ॥१।८०॥
[34]शक्तस्यशक्यकरणात् ॥१।८२॥ कारणभावाच्च ॥१।८३॥
[35]सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ॥१।८१॥
[36]कार्यात्कारणानुमानंतत्साहित्यात् ॥१।१००॥
[37]संहतपरार्थत्वात्पुरुषस्य ॥ १।३१ ॥ संहतपरार्थत्वात् ॥१।१०५ ॥विमुक्तमोक्षार्थंस्वार्थं वा प्रधानस्य ॥२।१॥ पुरुषार्थंकरणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ॥२।३६॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंतत्कृतेसृष्टिराविवेकात् ॥३।४७॥ स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानात्भृत्यवत् ॥३।६१॥
[38]हेतुमदनित्यंसक्रियमनेकाश्रितंलिङ्गम् ॥१।८९॥
[39]नाशःकारणलयः ॥१।८६॥
[40]न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥१।१६॥
[41]द्रष्टृत्वादिरात्मनःकरणत्वमिन्द्रियाणाम् ॥२।२९॥ विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥१।१७॥चिदवसानोभोगः ॥१।६९॥ भोक्तृभावात् ॥१।१०८॥ चिदवसानाभुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ॥६।५५॥
[42]उपरागात्कर्तृत्वंचित्सान्निध्यात् ॥१।१३९॥अकर्तुरपिफलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ॥१।७०॥ अहङ्कारः कर्ता न तुपुरुषः ॥६।५४॥ निर्गुणत्वात्तदसम्भवादहङ्कारधर्माह्येते ॥६।६२॥ अहङ्कारकर्त्रधीनाकार्यसिद्धिर्नेश्वरधीनाप्रमाणाभावात् ॥६।६४॥
[43]प्रकारान्तरासम्भवादविवेक एव बन्धः ॥६।१६॥
[44]रागविरागयोर्योगःसृष्टिः ॥२।९॥
[45]प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्यतद्धानेहानम् ॥ १।२२ ॥
[46]तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ॥१।४८॥ न मुक्तस्यबन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ॥६।१६॥
[47]अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ॥१।१२३॥
[48]इदानिमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥१।१२४॥
[49]न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥१।२॥ युक्तितोऽपि न बाध्यतेदिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥१।२४॥ नानुश्रविकादपितत्सिद्धिःसाध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥१।४७॥ न श्रवणमात्रात्तत्सिद्धिरनादिवासनायाबलवत्त्वात् ॥२।३॥ नियतकारणत्वान्नसमुच्चयविकल्पौ ॥३।२३॥
[50]साक्षात् सम्बन्धात्साक्षित्वम् ॥ नित्यमुक्तत्वम् ॥१।१२६-७॥ज्ञानान्मुक्तिः ॥३।२४॥ विविक्तबोधात्सृष्टिनिवृत्तिःप्रधानस्यसूदवत्पाके ॥३।६३॥ नैकान्ततोबन्धमोक्षौपुरुषस्याविवेकादृते ॥३।७१॥

[51]तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागःस्वस्थः ॥२।३४॥ ध्यान धारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ॥६।२९॥
[52]तत्त्वाभ्यासान्नेतिनेतीतित्यागाद्विवेकसिद्धिः ॥३।७५॥
[53]श्रुतिविरोधान्नकुतर्कापसदस्यात्मलाभः ॥६।३४॥
[54]व्यक्तिभेदःकर्मविशेषात् ॥३।१०॥
[55]कर्मवैचित्र्यात्सृष्टिवैचित्र्यम् ॥६।४२॥ कर्मवैचित्र्यात्प्रधानचेष्टागर्भदासवत् ॥३।५१॥ कर्माकृष्टेर्वानादितः ॥३।६२॥
[56]न धर्मापलापःप्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ॥५।२०॥
[57]अन्तःकरणधर्मत्वंधर्मादीनाम् ॥ गुणादीनाञ्चनात्यन्तबाधः ॥५।२५-२६॥
[58]प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यंवैधर्म्यम्॥सां० १।९२॥
[59]ऊर्ध्वंसत्त्वविशाला। तमोविशाला मूलतः। मध्येरजोविशाला ॥३।४८-५०॥
[60]पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः ॥५।२७॥
[61]जपास्फटिकयोरिवनोपरागःकिन्त्वभिमानः ॥६।२८॥
[62]तदपि दुःखशबलमितिदुःखपक्षेनिक्षिपन्तेविवेचकाः ॥६।८॥
[63]स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ॥३।३५॥
[64]जन्मादिव्यवस्थातःपुरुषबहुत्वम् ॥१।११४॥
[65]एवमेकत्वेनपरिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ॥ अन्यधर्मत्वेऽपिनारोपात्तत्सिद्धिरेकवत् ॥ नाद्वैतश्रुतिविरोधोजातिपरत्वात् ॥१।११७-९॥वामदेवादिर्मुक्तोनाद्वैतम् ॥१।१२२॥ नाद्वैतमात्मनोलिङ्गात्तद्भेदप्रतीतेः ॥५।५७॥ उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौपुनर्द्वैतम् ॥६।४६॥
[66]जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद्बाधकाभावात् ॥६।५२॥
[67]न कल्पनाविरोधःप्रमाणदृष्टस्य ॥२।२५॥

पृष्ठ 3 का शेष

बलपराक्रमाय, दृढ़ाय दीर्घायुषे च समर्था भवन्ति, तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरेतद् यज्ञकर्म नित्यमनुष्ठेयम्।

तथा च परमेश्वरणेय या महती=पूज्या वाक् प्रकाशिताऽस्त्या स्याः प्रत्यक्षकरणयेश्वरनुगृहापेक्षा स्वपुरुषार्थता च कार्या।

यथेश्वरः परोपकारिणां नृणा मुपर्य्यनुग्रहं करोति तथैवास्मा भिरपि सर्वेषां प्राणिनामुपरि नित्यमनुग्रहः कार्यः।

यथाऽयमन्तर्यामीश्वरः सूर्यलोकश्चाध्यात्मीन वेदेषु च सत्यं ज्ञानं, मूर्तद्रव्याणि नैरन्र्तेण प्रकाशयति तथैव सर्वैरम्माभिर्मनुष्यैः सर्वेषां सुाायाऽािला विद्याः प्रत्यीकृत्य नित्यं प्रकाशनीयाः। ताभिः पृथिवीराज्यसुां नित्यं कार्यामिति।।1 ।20।।

भावार्थ इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार है। जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और वायु आदि पदार्थ हैं वे सबकी शुद्धि, बल-पराक्रम, दृढ़ दीर्घ आयु की प्राप्ति में समर्थ होते हैं, अतः सब मनुष्यों को इस यज्ञकर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

और-परमेश्वर ने जो यह महती=पूजा के योग्य वेदवाणी प्रकाशित की है इसको प्रत्यक्ष करने के लिए ईश्वर के अनुग्रह की अपेक्षा तथा निज पुरुषार्थ सदा करना चाहिये।

जैसे-ईश्वर परोपकारी नरों पर अनुग्रह करता है वैसे हमें भी सब प्राणियों पर नित्य अनुग्रह करना चाहिये।

जैसे-यह अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान को और सूर्य लोकों मूर्तद्रव्यों को निरन्तर प्रकाशित करता है वैसे ही हम सब मनुष्यों को सबके सुख के लिए सब विद्याओं को प्रत्यक्ष करके उन्हें नित्य प्रकाशित करना चाहिये और उनसे पृथिवी से राज्यसुख को सिद्ध करना चाहिये।।1 ।20।।

इतिहास को बिगाड़ती कहानियां (2)

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! किसी भी प्रकार की शिक्षा का समाज में शुद्ध प्रचार तभी होता है, जब उसके प्रचारक (उपदेशक) और श्रोता (उपदेश्य) सजग होते हैं, अन्यथा अन्ध परम्परा चल पड़ती है। इतिहास भी ऐसा ही विषय है। कभी भावुक लोग और कभी धूर्त लोग इतिहास बिगाड़ते रहते हैं। पुराणों की कहानियाँ गढ़ने वालों ने आर्यों के प्राचीन इतिहास को भी नहीं छोड़ा। अवतारवाद और चमत्कारवाद से मोहित हुए लोगों को तो इतिहास की चिन्ता ही नहीं है। वे तो पुराणों की तरह रामायण-महाभारत को भी पूजा तक ही सीमित रखते हैं। इनमें क्या अच्छा है, क्या बुरा है, इस बात से इन्हें कुछ लेना-देना नहीं, ये तो सबकी पूजा करते हैं, पर आर्यों को पीड़ा होती है, जब उन्हें सुनना पड़ता है कि राम-कृष्ण काल्पनिक हैं; हिन्दुओं के सभी देवी-देवता या ऋषि-मुनि चरित्रहीन व कुकर्मी थे। यदि वर्तमान पीढ़ी (विज्ञान पढ़ी हुई) अपने अतीत का मजाक उड़ाती हे, तो इसका दोष केवल अंग्रेजों या अंग्रेजी शिक्षा को ही नहीं दिया जा सकता। वह परम्परा भी दोषी है, जिसने धरती के इतिहास को आसमानी बनाने वालों की धूर्तता को नहीं पहचाना और संस्कृत के अक्षर-अक्षर को प्रमाण मानकर सभी अच्छे-बुरे को ढोती चली आई।

आज भी हिन्दू समाज में बहुत बड़ा पढ़ा-लिखा ऐसा वर्ग है जो यह मानता है कि महर्षि वाल्मीकि ने राम के जन्म से भी दस हजार वर्ष पूर्व रामायण लिख दी थी। इससे महर्षि वाल्मीकि को तो त्रिकालदर्शी बना दिया, पर उनका ग्रन्थ तो इतिहास की श्रेणी से निकाल दिया, क्योंकि इतिहास भूतकाल (घटित घटना) का होता है, भविष्य का नहीं। इतिहास का अर्थ- इति ह आस (ऐसा ही हुआ) होता है, होगा नहीं। इसके साथ ही यह भी सिद्धान्त समाज में प्रचलित हो गया कि जीवन में सब कुछ पहले से ही निश्चित होता है, भाग्य के लिखे को कोई नहीं मिटा सकता।

जबकि रामायण में तो यही लिखा है कि महर्षि वाल्मीकि ने किसी महापुरुष के विषय में पूछते हुए नारद जी से कहा-

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।। बाल. 1/2

"(मुने!) इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला और दृढ़ प्रतिज्ञ कौन है?" और

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृतस्नं विचित्र पदमर्थवत्।।

बाल. 4/1

श्रीराम के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस काव्य की रचना की।"

यह सत्य है कि सात काण्डों वाली सम्पूर्ण रामायण महर्षि वाल्मीकि ने नहीं लिखी, क्योंकि न चाहते हुए भी गीता प्रेस ने भी कई सर्ग प्रक्षिप्त माने हैं, पर उन्हें हटाने या उन पर टिप्पणी लिखने की हिम्मत ये नहीं कर पाये। यह संसार उस ऋषि दयानन्द का ऋणी रहेगा, जिसने ऋषियों के नाम से महापुरुषों के चरित्र को कलंकित करने वाली धूर्तता को पहचानने वाली दृष्टि व उसका विरोध (खण्डन) करने की शक्ति प्रदान की। देखिये-

महाराज दशरथ निस्सन्तान थे। अतः पुत्रेष्टि यज्ञ करने के लिए उन्होंने ऋष्यश्रृंग को बुलवाया था, जबकि रामायण में हमें अश्वमेघ यज्ञ होता हुआ मिलता है।

वहाँ विभिन्न देवताओं के निमित्त यूपों में पशु, सर्प, पक्षी, कूर्म आदि तीन सौ जीव बंधे हुए थे व अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा भी, जिसका कौशल्या ने तीन तलवारों से स्पर्श किया व एक रात उसके (घोड़े के) साथ रही ....। घोड़े के अंगों की आहुति दी गई। अर्थ कोई कुछ भी लगाता रहे, पर यह सत्य है कि न तो यह वैदिक परम्परा थी और न अश्वमेध यज्ञ का अवसर।

महर्षि वाल्मीकि को राम का चरित्र लिखना था, पर हमें मिलती है पुराणों की सामग्री- गंगा की उत्पत्ति, शिव-उमा की रति-क्रीड़ा, इन्द्र द्वारा अहल्या का सतीत्व भंग करने का कामुक वर्णन और वह भी ऋषियों के मुख से। प्रबुद्ध पाठक! तनिक सोचिये, क्या विश्वामित्र ऋषि के पास राम-लक्ष्मण को सुनाने के लिए यही सामग्री थी और क्या महर्षि वाल्मीकि के लिए यह सब लिखना आवश्यक था? नीचता की हद तो तब हो गई जब अहल्या के पुत्र राजा जनक के पुरोहित शतानन्द के मुख से ही विश्वामित्र को कहलवाया-

अपि रामाय कथितं यद् वृत्तं तत् पुरातनम्।
मम मातुर्महातेजो देवेन दुरनुष्ठितम्।। बाल. 51/6

महातेजस्वी मुने! क्या आपने श्रीराम से वह प्राचीन वृतान्त कहा था, जो मेरी माता के प्रति देवराज इन्द्र द्वारा किये छल-कपट एवं दुराचार द्वारा घटित हुआ था?"

फिर यही शतानन्द राम-लक्ष्मण को मेनका, रम्भा आदि अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र की तपस्या भंग करने की कामुक कथा सुनाता है। ओ तिलकधारियो! ओ मठाधीशो! ओ कथा-चवाचको! ओ हिन्दू धर्म के ठेकेदारों! क्या यही है तुम्हार धर्म-प्रचार? क्या यही है तुम्हारे पूर्वजों का गौरव? क्या यही है तुम्हारी देवताओं की पूजा? क्या ऐसे ही चरितों से प्रेरणा लेते हो तुम?

इस दुराचार को देखकर उन्नीसवीं शदी के महर्षि का हृदय रो पड़ा और अपने पूर्वजों के पावन चरित्र से कुकर्मो का कलंक मिटाते हुए उसने घोषणा की- ब्राह्मण गन्थों की इस (अहल्या-इन्द्र) मूल कथा के पात्र मानव न होकर प्राकृतिक पदार्थ हैं- अहल्या नाम रात्रि का है, जिसमें अह (दिन) लय (छिपना) हो जाता है। तीव्र गति होने से चन्द्रमा का नाम गौतम है। इसका अहल्या के साथ पति का सम्बन्ध है। इन्द्र नाम सूर्य का है, जिसके उदय होने से रात्रि का सौन्दर्य बिगड़ जाता है। यही जार कर्म है, अन्य कुछ नहीं।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने 'वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप में लिखा है कि इस कथा का मूल शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। वहाँ यज्ञ के देवता इन्द्र (प्राकृतिक पदार्थ) के लिए 'अहल्यायै जारेति' (अहल्या का जार) केवल इतना ही लिखा है। इन्हीं शब्दों के आधार पर षड्विंश ब्राह्मण में ऐसी कथा बनी- देवासुर संग्राम में गौतम बहुत थक गया तो इन्द्र उनहें विश्राम करने के लिए कहकर स्वयं गौतम के रूप में विचरने लगा। अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ ऐसे ही शब्द मिलते हैं, पर वाल्मीकि-रामायण में तो तिल का ताड़ बन गया। कई पुराणों में घूमकर यह कथा कथासरित् सागर तक में पहुँच गई और लोक में इसका अश्लील रूप ही प्रचलित हो गया। हम धर्म-रक्षक बने इन कथाओं का प्रचार करते रहे। सत्यार्थ बताने वाले को विष देकर मार दिया। फिर भी सनातन धर्म की जय बोलते रहे।

हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों (पुराणों) में अवतार और चमत्कार की भरमार है। उसी की आशा (अज्ञान) में जीकर हिन्दू विनाश को प्राप्त हुए। 'यदा-यदा हि धर्मस्य. ..' की रट लगाते हुए हजारों हिन्दू सोमनाथ मन्दिर के चारों ओर खड़े रहे, तमाशा देखने के लिए कि जब महमूद मन्दिर में प्रवेश करेगा, तो भगवान सोमनाथ प्रकट होकर उसका सिर उड़ा देंगे। वे भोले लोग अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पाये, जब उन्होंने देखा कि महमूद का सिर तो ठीक रहा, पर मूर्तियों और पुजारियों के सिर उड़ गये। फिर 50 हजार हिन्दू काट डाले गये, गुलाम बनाये गये और मन्दिर का खजाना लूटकर महमूद

गजनी ले गया। कई शताब्दियों तक यह क्रम (लूट और अत्याचार) चलता रहा, फिर भी हम अवतार और चमत्कार की बाट देखते रहे और मिटते रहे।

आज भी अधिकतर हिन्दू उसी विश्वास में जी रहे हैं। नये-नये मन्दिर नये-नये भगवान, नये-नये देवी-देवता, नये-नये गुरु (जीवित व मृत), बाबा, पीर, फकीर नये-पुराने, अपने-बेगाने सब ही तो पूज दिये, इस आशा में कि ये प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे देंगे, तो हम मालो-माल हो जाएंगे। इसके मूल में सिद्धों, सन्तों, पीरों आदि के विषय में उनके शिष्यों द्वारा (विशेषकर-मरने के बाद) प्रचारित की गई चमत्कारिक कहानियाँ ही होती हैं। ऐसी-ऐसी कहानियाँ धूर्त पण्डितों ने रामायण तक में मिला दीं और हम उनका प्रचार करते रहे। देखिये-

पिता की मृत्यु और भाभी व भाइयों के वनवास के कारण उजड़ी-सी उदास अयेध्या नगरी में प्रवेश करने पर भरत को अपनी माँ की करतूत का पता चला तो उसने माँ कैकेयी को धिक्कारा। स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उसने माँ कौशल्या के सामने शपथ खाई। अपने जलते हुए हृदय को शान्त करने के लिए उसने राम को वापिस लाने की ठान ली। गुरु वशिष्ठ, माताओं, सेना व शत्रुघ्न के साथ भरत जब भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचा, तो मुनि द्वारा किये गये उनके स्वागत का वर्णन करने में प्रक्षेपक (धूर्त पण्डित) ने शेख चिल्ली को भी मात कर दिया। लिखा है-

ऋषि भरद्वाज के आदेश से वहाँ मैरेय (नशीला पदार्थ), सुरा (शराब) बहाने वाली नदियाँ आईं, इन्द्र की अप्सराएँ आभूषणों तथा नृत्य-गीत के उपकरणों सहित पधारीं। सभी ने नृत्य-संगीत का आनन्द लिया। सभी के लिए अलग-अलग दिव्य भोजन, वस्त्र तथा शय्या की व्यवस्था थी। महर्षि भरद्वाज की आज्ञा से भरत ने नाना प्रकार के रत्नों से भरे हुए महल में मंत्रियों सहित प्रवेश किया। फिर खीर भरी हुई नदियाँ उपस्थित हुईं। उसी समय ब्रह्मा जी की भेजी हुई दिव्य आभूषणों से विभूषित 20000 अप्सराएँ आईं। अपने स्पर्श से पुरुष को उन्मादग्रस्त कर देने वाली कुबेर की भेजी 20000 दिव्य महिलाएँ आईं, 20000 अप्सराएँ नन्दन वन से आईं। अलम्बुषा आदि चार अप्सराएँ भरद्वाज मुनि की आज्ञा से भरत के समीप नृत्य करने लगीं। बेल के पेड़ मृदंग बजाते, बहेड़े के पेड़ ताल देते और पीपल नृत्य करते थे। वन की लताएँ नारी का रूप धारण करके सैनिकों को कह रही थीं- शराब पीने वालो! शराब पीओ। भूखे लोगों! खीर खाओ, बढ़िया माँस खाओ। सात-आठ तरुणी स्त्रियाँ मिलकर एक-एक पुरुष को नदी के मनोहर तटों पर उबटन लगा-लगाकर नहलाती थीं। बड़े-बड़े नेत्रों वाली सुन्दरियाँ अतिथियों के पैर दबाने के लिए आईं थीं। अप्सराओं का संयोग पाकर सैनिक कहने लगे- 'अब हम अयोध्या नहीं जाएंगे, दण्डकारणय में भी नहीं जाएंगे। भरत सकुशल रहे, राम सुखी रहे।'

हजारों सैनिक फूलों के हार पहनकर नाचते, हँसते और गाते हुए सब और दौड़ते फिरते थे। वहाँ शराब से भरी हुई बावड़ियाँ प्रकट हो गई थी तथा उनके तटों पर तपे हुए कुण्ड में पकाये गये मृग, मोर और मुर्गों के मांस के ढेर के ढेर रख दिये गये थे।'

इस कल्पना से महर्षि भरद्वाज भले ही योग की विभूति वाले सिद्ध हो गए, पर रामायण धरती का इतिहास न रहकर आसमानी (हवाई) किला बनकर रह गया। न तो यह चमत्कार दिखाने का समय था ओर न ऋषि लोग किसी का इस प्रकार स्वागत करते हैं। वैसे भी यह कोई खुशी का अवसर नहीं था। भरत को तो पिता व भाइयों का वियोग जला रहा था; वह रोता-रोता मूर्च्छित हो रहा था। साथ वाले सभी आँसू बहा रहे थे। क्या ऐसे अवसर पर मांस, शराब और सुन्दरियों का मजा लिया जा सकता था और क्या भरत आदि इनका सेवन करते थे? पुरुषों को उन्मादग्रस्त करने वाली औरतें किसलिए आई थीं? इस वर्णन को पढ़कर क्या महर्षि भरद्वाज को विवेकशील (समझदार) कहा जा सकता है? क्या महर्षि भरद्वाज मूर्ख थे? फिर उन्हें बदनाम करने वाली कहानियों को बिना टिप्पणी छापकर प्रचार

करने वाली संस्थाएँ (गीता प्रेस आदि) कौन सा पुण्य लूट रही हैं? ये उस धूर्त पण्डित से भी अधिक पापी हैं, जिसने यह कहानी रामायण में घुसेड़ी। यह धर्म प्रचार है या पूर्वजों को बदनाम करने का ठेका?

मांस-शराब से सम्बन्धित अनेक श्लोक रामायण, महाभारत आदि में घुसेड़े गये हैं, और निश्चित रूप से ये तांत्रिक युग की बदमाशी है। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामायण के व्याख्याकार बहुत हेर-फेर करते रहे कि मांस का अर्थ फलों का गूदा है, पर कई स्थानों पर न चाहते हुए भी उन्हें मांस का अर्थ जीव-जन्तुओं का मांस ही कहना पड़ा। जब विदेशी इतिहासकार आर्यों को शराबी व मांसाहारी कहते हैं, तो क्या ये उनका विरोध कर सकते हैं? हिन्दुओ! सोचिये, क्या आपके पूर्वज ऐसे ही थे, जैसा गीता प्रेस प्रचार कर रही है?

यदि ऐसे प्रसंगों को प्रक्षिप्त कहने और उन्हें निकाल फेंकने की हिम्मत इनमें नहीं है, तो कम से कम टिप्पणी ही लिख देते। देखिये, इन महाशय को टिप्पणी लिखना भी कहाँ याद आया! जब रावण सीता को लंका में ले गया और उसे अपने अन्तःपुर में रखा, तो वहाँ लिखा हुआ है-

तत्र तामसितापाङ्गी शोक मोहसमन्विताम्।। अरण्य. 54/13

निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम्।

“कजरारे नेत्रप्रान्वाली सीता शोक और मोह में डूबी हुई थीं। रावण ने उन्हें अन्तःपुर में रख दिया, मानो मयासुर ने मूर्तिमती आसुरी माया को वहाँ स्थापित कर दिया हो।”

इस पर टिप्पणी करते हुए व्याख्याकार ने लिखा है- “रामायण तिलक नामक व्याख्या के विद्वान् लेखक ने यह बताया है कि यहाँ जो सीता की माया से उपमा दी गयी है, उसके द्वारा यह अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि मायामयी सीता ही लंका में आयी थीं; मुख्य सीता तो अग्नि में प्रविष्ट हो चुकी थीं। इसीलिये रावण इन्हें ला सका। मायारूपिणी होने के कारण ही रावण को इनके स्वरूप का ज्ञान न हो सका।”

रामायण में कहीं भी यह नहीं लिखा कि सीता अग्नि में प्रविष्ट हो गई थी या राम ने उन्हें अग्नि को सौंप दिया था। इन कहानियों से रामायण इतिहास कोटि से बाहर हो जाता है। अवतारवादियों के अनुसार जब श्रीराम नर-लीला कर रहे थे, तो यह देव लीला कहाँ से आ गई? और क्या श्रीराम सीता की रक्षा करने में असमर्थ थे, जो उसे अग्निदेव को सौंप दिया और संसार को धोखा देने के लिए नकली (माया) सीता को साथ लेकर फिरते रहे? क्या श्रीराम नकली सीता के लिए ही रो रहे थे और नकली सीता की परीक्षा (अग्नि) लेकर संसार को धोखा दे रहे थे? जबकि युद्ध काण्ड के सर्ग 118 में लोक साक्षी अग्नि (पुरुष-आग नहीं) सीता को श्रीराम को सौंपते हुए कहते हैं-

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा।

त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने सती।। युद्ध. 118/7

“अपने बल-पराक्रम का घमण्ड रखने वाले राक्षस रावण ने जब इस (सीता) का अपहरण किया था, उस समय यह बेचारी सती सूने आश्रम में अकेली थी- आप इसके पास नहीं थे, अतः यह विवश थी।”

यह वर्णन तो यही सिद्ध करता है कि रावण ने सीता का ही अपहरण किया था, माया (नकली) सीता का नहीं। फिर हम मिथ्या काल्पनिक कहानियाँ गढ़कर इतिहास की हत्या करने वालों में क्यों शामिल हों? वरदान और अभिशाप की कहानियाँ इतिहास की हत्या करती हैं। ऐसी कहानियों से मनोरंजन तो हो सकता है, प्रेरणा नहीं ली जा सकती और इतिहास प्रेरणा के लिए होता है। हममें ऐसा विवेक और राष्ट्रभाव कब जागेगा कि हम रामायण-महाभारत आदि ग्रन्थों को पूजा-घर से उठाकर पठन-पाठन का विषय (इतिहास) बना पाएँ।

❑❑

सुख शान्ति साधना साक्षात्कार का आधार स्वाध्याय

(राम निवास गुणग्राहक)

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की महनीय मान्यता है- 'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।' यहाँ बड़ा सीधा सा सन्देश है कि सब मनुष्य सामान्य व्यवहार से सम्बन्धित सच-झूठ को जानते हैं। महर्षि के इस कथन से इनकार करना सरल नहीं। सच और झूठ का सामान्य ज्ञान रखने वाला मनुष्य भी अपने किसी स्वार्थ के लिए, हठ और दुराग्रह के वशीभूत होकर, अविद्या आदि दोषों के कारण सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुक जाता है। प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक दुर्बलता है कि वह जितने अंशों में सच को जानता और मानता हे, उतने अंशों में वह उसे अपने व्यवहार में नहीं उतार पाता। अगर अपने जाने और माने हुए सच को हम व्यवहार के धरातल पर साकार कर सकें तो महर्षि याज्ञवल्क्य हमें बड़ा उत्साहवर्धक आश्वासन देते हैं। महर्षि शतपथ ब्राह्मण में लिखते हैं- 'यः सत्यं वदति, यथाग्निं समिद्धं तं घृतेन अभिषिञ्चत् एवं हैनं स उद्दीपयति। तस्य भूयोभूयः तोजोभवति, श्वः श्वः श्रीमान् भवति। (2.2.2.19) अर्थात् जो सत्य बोलता है, तो जैसे प्रदीप्त अग्नि पर घी छिड़कने से अग्नि उद्दीप्त हो उठता है, वैसे ही सत्य वक्ता का तेज उद्दीप्त होता है। प्रतिदिन उसका कल्याण ही होता हैं

मानव स्वभाव की समस्या यह है कि हम अपना कल्याण तो चाहते हैं, लेनिक अपनी शर्तों पर। सुख-शान्ति समृद्धि और कल्याण के लिए सच्चा विधि-विधान क्या है, यह जानने और उस पर निष्ठापूर्वक व्यवहार करने वाले कितने भाग्यशाली होंगे? मनमाने ढंग से सुख शान्ति पाने के लिए जीवन लगा देने वालों की असफलता और परमात्मा की वेद वाणी वर्णित सुख शान्ति के विधि-विधान के अनुसार चलकर कुछ पा लेने वालों की उपलब्धियों को देखकर भी किसी के अन्तर्हृदय में सत्य पथ पर चलने की ललक न जगे तो उसकी बौद्धिक क्षमता का मोल दो कौड़ी का भी क्यों कर होगा? वेद की बड़ी स्पष्ट मान्यता है कि परमात्मा ने हमारे हृदय में सत्य के प्रति श्रद्धा और असत्य के प्रति अश्रद्धा स्वाभाविक रूप से दे रखी है।- "अश्रृद्धां अनृतेदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।" ईश्वर की इतनी महान् कृपा को पाकर भी हम सत्य का सम्मान न करें, सत्य को जीवन में धारण न कर सकें तो हमारा मानव होना उपनिषद् के ऋषियों की दृष्टि में 'महती विनष्टि' अर्थात् महाविनाश का कारण है। आत्मकल्याण के लिए प्राप्त यह नरतन ही जब अभिशाप बन जाए, आग बुझाने वाला शीतल जल ही जब जलन पैदा करने लगे तो ऐसी भाग्यहीनता का उपाय कोई कहाँ से लाये?

इस समस्या के आन्तरिक पक्ष पर एक दृष्टि डालकर देखें तो पता चलता है कि हमारे हृदय में सत्य और असत्य का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। सत्य और असत्य दोनों एक दूसरे को दबाकर स्वयं आगे आना चाहते हैं। उनके इस द्वन्द युद्ध में मनुष्य जिसके पक्ष का समर्थन कर देता है, वह जीत जाता है। हमारे अन्दर होने वाले सत्य-असत्य के संघर्ष और हमारे समर्थन पर वेद बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डालता है। मंत्र इस प्रकार है-

''सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्वृधाते।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्त दित्सोमो अवति हन्त्यासत!! (अथर्व. 8.4.12)

अर्थात् उत्तम ज्ञान के अभिलाषी जन के सामने सत्य और असत्य दोनों वचन परस्पर प्रतिस्पर्धा करते हुए आते हैं। उनमें जो सत्य है, जो सरल है, उसे ही शान्ति का अभिलाषी जन अपना लेता है और असत्य को त्याग देता है। मंत्र स्पष्ट कहता है कि सोम अर्थात् शान्ति चाहने वाला सत्य को स्वीकार लेता है और असत्य को त्याग देता है। यहाँ सत्य की एक पहचान बताई है कि सत्य सरल होत है, कुटिल नहीं होता। समस्या क्या है कि हम शान्ति तो चाहते हैं लेकिन वेद की बात न मानकर! वेद कहता है कि शान्ति चाहते हो तो सत्य की रक्षा करो, सत्य को स्वीकार करो। आज का मानव कहता है, प्रभो! मैं शान्ति तो चाहता हूँ लेकिन सत्य को स्वीकार करना मुझे सरल नहीं लग रहा। क्या असत्य के कन्धों पर सवार होकर मैं शान्ति नहीं पा सकता? जिस दिन, जिस पल मनुष्य सत्य को स्वीकार करने का संकल्प लेकर असत्य को ठुकराने का साहस पा लेगा, वह दिन और वह पल उसके जीवन में संसार की समस्त सुख-शान्ति और समृद्धि के द्वार खोल देगा। जब तक वह ऐसा नहीं करेगा, तब तक सुखद और शान्तिप्रद दिखने वाली जिस वस्तु पर वह हाथ रखेगा, वह वस्तु उसके लिए दुःख दुविधा और दुर्गति का पिटारा ही खोलेगी।

सत्य-असत्य की इस संघर्षपूर्ण खींचतान और उसमें मानव की निर्णायक भूमिका को जानने के बाद स्वाध्याय का महत्व भली-भाँति हमारी समझ में आ सकता है। इस विवेचन को समझने के बाद विवेकशील मानव के लिए यह स्वीकार कर लेना कोई कठिन न होगा कि निरन्तर सत्य का समर्थन करते रहने वाले धीर-वीर पुरूष के सामने कालान्तर में असत्य प्रबलता से सिर उठाने के योग्य नहीं रहता। यही स्थिति असत्य के पक्षपोषण करने वाले की होती है। हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि के प्रभाव में आकर मनुष्य जब सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुकने का स्वभाव ही बना लेता है तो निरन्तर तिरस्कार और उपेक्षा का शिकार होकर सत्य दुर्बल हो जाता है ओर पुरुष के समर्थन से पोषण पाकर असत्य अपने प्रभाव को बढ़ा लेता है। यहाँ पुरुष अर्थात् हमारी भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। यहाँ एक बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि यदि हम स्वयं को सत्य का समर्थन करने के योग्य बना लें, तो हम अवनति (पतन) को रोककर उन्नति (उत्थान) की दिशा में बढ़ सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण एवं व्यवहार के धरातल पर सत्य प्रमाणित हो चुका तथ्य यह है कि सत्य का समर्थन करके सत्य के सहारे सुख-शान्ति, साधना व साक्षात्कार के पथ पर बढ़ना प्रारम्भ में जितना कठिन और दुर्गम लगता है, आगे चलकर वह हमारे स्वभाव का अंग बनकर अत्यन्त सरल और सुगम होता चला जाता है। जो चार कदम इस सत्य पथ पर चल चुके हैं, उनके हृदय में अठखेलियाँ कर रहे उत्साह, साहस, आनन्द और अटल विश्वास की झलक देखकर अपना भय दूर कर सकता है।

(स्वाध्याय का हमारे जीवन में सबसे अमूल्य लाभ यही है कि निरन्तर सद् ग्रन्थों वेद शास्त्रों, अपनिषद् ओर दर्शनों का स्वाध्याय करते रहने से हमारे अन्दर सत्य को स्वीकारने और असत्य को लताड़ने की शक्ति पैदा हो जाती है। स्वाध्याय क्या हे? सामान्य जन की भी समझ में सरलता से आ सके, ऐसी परिभाषा स्वाध्याय की करने चलें तो स्वाध्याय आत्मा का स्थूल भोजन है, जिसे वह बुद्धि रूपी मुख से प्राप्त करता है। शरीर का भोजन जैसे विभिन्न ग्रन्थियों से प्राप्त विभिन्न रसों को मिलाकर आँतों में पचाया जाता है तो उसमें से रस, रक्त और माँस मज्जा आदि अवस्थाओं से निकलकर वह अन्तिम धातु वीर्य बनकर पौरूष, पराक्रम के रूप

में प्रकट ोता है, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान, विद्या चिन्तन, मनन, निदिध्यासन आदि अवस्थाओं से परिपुष्ट होकर साक्षात्कार की अवस्था में पहुँचता है तो वह हमारे आत्मबल में अपूर्व वृद्धि का कारण बनता हैं शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल मानव के आत्मकल्याण में कितना अधिक सहायक होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। शरीर-बल जैसे शरीर-यात्रा में सहायक होता है, ठीक वैसे ही आत्मबल आत्मोन्नति में सहायक है। शारीरिक बल शरीर के साथ ही बनता-बिगड़ता है जबकि आत्मबल देह-देहान्तरों तक चलने वाले आत्म कल्याण-अभियान में काम आता रहता है।)

स्वाध्याय के महत्व पर शास्त्रीय रीति से चिन्तन करने पर स्वाध्याय की महिमा हमारे हृदय में घर कर जाती है। वैदिक काल में शिक्षा पूर्ण होने पर दीक्षान्त समारोह के समय आचार्यगण गृहस्थ में पदार्पण करने वाले स्नातकों को जो महत्वपूर्ण शिक्षाएँ जीवनभर पालने के लिए देते थे, उनमें- स्वाध्यायान्या प्रमदः' और 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' का विशेष स्थान होता था। स्वाध्याय के माध्यम से ही हम आत्मकल्याण के पथ से, मोक्ष के लक्ष्य में जुड़े रह सकते हैं। स्वाध्याय ही एक मात्र ऐसा अनुष्ठान है जो चारों आश्रमों में समान रूप से करणीय कर्त्तव्य माना है? ब्रह्मचर्य आश्रम में निरन्तर स्वाध्याय करते रहने वाले बटुक जब गृहस्थ के महनीय उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने हेतु जाता है तो उसे आदेश मिलता है परिवार के भरणपोषण में स्वाध्याय को मत भूल जाना। वानप्रस्थ के लिए तो स्वाध्याय और साधना ही कर्म मुख्य हैं! संन्यास के समय कहा जाता है- "संन्यसेत् सर्वकर्माण वेदमेकं न संन्यसेत्''- अर्थात् चाहे सारे कर्म छोड़ देना लेकिन वेद का स्वाध्याय मत छोड़ना। शतपथ में लिखा है- इस द्यु-लोक और पृथिवी लोक के बीच में जो भी कोई श्रम हैं, स्वाध्याय उन सबकी पराकाष्ठा हैं। (11.5.7.2) महर्षि दयानन्द स्वाध्याय (वेद पढ़ना-पढ़ाना) परम धर्म मानते हैं तो महर्षि याज्ञवल्क्य स्वाध्याय को परम् तप मानते हैं। कोई व्यक्ति सुगन्धित तेल लगाकर श्रृंगार किये हुए, अच्छी प्रकार से सुखदायक बिछौने पर लेटा हुआ भी स्वाध्याय करता है, तो समझना चाहिए कि वह नख से शिख पर्यन्त तप कर रहा है। महर्षि मनु का कथन है- 'आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः।

यः स्रग्व्यपि छिजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्।। (2.167)

जो द्विज सुगन्धित माला धारण किये हुए भी यथा सामर्थ्य प्रतिदिन स्वाध्याय करता है, निश्चय जानो कि वह नखाग्र पर्यन्त परम तप कर रहा है। हमारे यज्ञ और योग जैसे आत्मा कल्याण करने वाले अनुष्ठान स्वाध्याय के बिना सम्पन्न नहीं होते। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में महर्षि दयानन्द ब्रह्म या के सम्बन्ध में लिखते हैं- "ब्रह्म यज्ञस्य अयं प्रकारः साङ्गानां वेदादि शास्त्राणां सम्यगध्ययनमध्यापनं संध्योपासनं च सर्वै कर्त्तव्यम्।" अर्थात् ब्रह्मयज्ञ का प्रकार यह है- वेदादि शास्त्रों का साँगोपांग अध्ययन-अध्यापन और संध्या नित्य करना सबका कर्त्तव्य है। महर्षि याज्ञवल्क्य की घोषणा- "स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः" (शत.11.5.6.3) भी दयानन्द के कथन का समर्थन कर रही है। अष्टांग योग की बात करें तो शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान मिलकर नियम की पूर्णता होती है। 'स्वाध्यायात् इष्ट देवता सम्प्रयोगः' की महत्ता को कोई स्वाध्यायशील ही बता सकता है। महर्षि व्यास तो अपने योगभाष्य में यहाँ तक लिखते हैं-

स्वाध्यायात् योगमासीत् योगात् स्वाध्याय मामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्यां, परमात्मा प्रकाशते।।

योग और स्वाध्याय दोनों के सम्यक् अनुष्ठान से ही परमात्मा प्रकाशित होता है।

❑❑

हमारा पर्यावरण व प्राणी जगत

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

सारी दुनिया में पर्यावरण एक ऐसा ज्वलन्त विषय है जिसको लेकर बुद्धिजीवी वर्ग अत्यनत चिन्तित व आन्दोलित है। ऐसा इस कारण से है कि पर्यावरण कोई साधारण समस्या नहीं है अपितु यह मनुष्य जाति व समस्त प्राणी जगत के जीवन मरण का प्रश्न है। यदि पर्यावरण को सुरक्षित व नियंत्रित न किया गया तो मानव जाति सहित समस्त प्राणी जगत का भविष्य अंधकारमय व विनाशकारी होकर उसके अस्तित्व को समाप्त भी कर सकता है। पर्यावरण प्राणी जगत के लिए ऐसा ही है जैसा कि चेतन-तत्त्व जीवात्माओं के लिए उनके अपने शरीर अर्थात् आत्मा के लिए मानव शरीर। ऐसा इसलिए है कि मानव शरीर उसमें निवास करने वाली जीवात्मा का एक प्रकार से पर्यावरण ही है। हम अपने शरीर की रक्षा के सभी उपाय करते हैं। स्नान करके इसे स्वच्छ रखना, शुद्ध वायु में श्वांस, शुद्ध जल का पान, पौष्टिक व संतुलित भोजन, समय पर सोना व जागना, पुरूषार्थ व तप, ईश्वरोपासना, मन व मस्तिष्क में सत्य व शुद्ध विचार, यज्ञ-अग्निहोत्र, माता-पिता की सेवा, परोपकार, समाज सेवा, निर्धनों की सहायता, भाूखों को भोजन, अज्ञानियों को शिक्षा आदि सब कुछ करते हैं इसका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है और वह स्वस्थ, निरोग, दीर्घजीवी, बलशाली, प्रतिष्ठित, यशस्वी, स्वावलम्बी, सुख व शान्ति से युक्त रहता है। जिस प्रकार हमारी आत्मा अर्थात् हमें, यह जड़ व मरणधर्मा शरीर स्वस्थ व निरोगी चाहिये उसी प्रकार से शरीर को स्वयं को स्वस्थ व निरोग रखने के लिए शुद्ध, सन्तुलित, प्रदूषण रहित, हरा-भरा प्राकृतिक वातावरण तथा अन्न-वनस्पति औषधियां चाहियें। यदि शरीर को स्वच्छ व प्रदूषण रहित वातावरण व पर्यावरण नहीं मिलेगा तो हमारे शरीर का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा और जीवन के साामन्य कार्यों को करने के स्थान पर हम जीवन की पूरी अवधि इसे रोगों से बचाने व आ गये अनचाहे रोगों के उपचार आदि में लगे रहेंगे। सुख का नाम भी शायद जीवन में याद न रहें, ऐसी स्थिति पर्यावरण के प्रदूषित होने पर भविष्य में आ सकती है।

आईये, कुछ चर्चा म पर्यावरण की भी कर लेते हैं। पर्यावरण, पृथिवी-अगिन-जल-वायु-आकाश की समस्त प्राणी जगत के जीवन-आयु-स्वास्थ्य के अनुकूल शुद्ध व आदर्श स्थिति को कहते हें। यदि हमारा वायुमण्डल शुद्ध व प्रदूषण से मुक्त हे, नदियों, नहरों, कुओं, तालाब, सरोवरों, वर्षा व खेतों में सिंचाई का जल भी शुद्ध व हानिकारक प्रभाव से मुक्त है, हमारी पृथिवी की उर्वरा-शक्ति अपनी अधिकतम क्षमता के साथ विद्यमान है, हमारे जंगल घने व सुरक्षित हे, देश के 3/4 भाग में वन व सभी प्रकार के वन्य-जन्तु हैं, भूमि के शेष भाग में कृषि-खेत, नगर-गांव-सड़कें व उद्योग आदि हैं, खनन द्वारा भुमि का अनावश्यक व अनुचित दोहन नहीं होता है, वातावरण स्वास्थ्य के अनुकूल है, समय पर वर्षा होती हो, वर्षा का जल पीने योग्य हो तथा उसमें हानिकारक तत्व घुले हुए न हों, सभी ऋतुयें समय पर आती-जाती रहती हों, तो यह मान सकते हैं कि हमारा पर्यावरण ठीक व सामान्य है। आज की स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। अतः अब यह देखना आवश्यक है कि यह स्थिति उत्पन्न कैसे हुई?

हमारी सृष्टि आज से 1,96,08,53,114 वर्ष पूर्व एक सत्य, चेतन व अपौरूषेय सत्ता द्वारा रची गई है। तभी से इस पर मानव या प्राणी जगत भी है, वनस्पतियां, जल, अग्नि, वायु आदि सब कुछ हैं। आरम्भ में वायु

मण्डल एवं पूरा पर्यावरण आदर्श रूप में था अर्थात् उसमें किंचित भी असन्तुलन या प्रदूषण नहीं था। जनसंख्या कम थी। धीरे-धीरे जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। इस कारण, सम्भवतः एकान्त प्रियता या भीड़भाड़ से दूर रहने के स्वभाव के कारण, लोग दूर-दूर जा कर बसने लगे और आरम्भ की कुछ शताब्दियां व्यतीत होने के साथ पृथिवी के चारों ओर मानव पहुंच गये व अपने निवास स्थान पृथिवी के सभी भागों में बना लिये। मनुष्य जहां रहता है वहां उसके शौच, रसाई या भोजन, वस्त्रों को धोने व अन्य कार्यों से जल व वायु में प्रदूषण उत्पन्न होता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि प्रदूषण व पर्यावरण के बारे में बहुत सतर्क, सजग व सावधान थे। उन्होंने मानव जीवन पद्धति लाईफ स्टाइल को कम से कम आवश्यकताओं वाली बनाया। वह जानते थे कि जितनी सुख की सामग्री प्रयोग में लायी जायेगी, उतना ही अधिक प्रदूषण होगा और उससे मनुष्य का जीवन, स्वास्थ्य व सुख-शान्ति प्रभावित होंगे। इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि हमारी इन्द्रियों की शक्ति सीमित होती है। इसे जितना कम से कम प्रयोग करेंगे व खर्च करेंगे उतना अधिक यह चलेगी या काम करेंगी। जो व्यक्ति अधिक सुख-साधनों का प्रयोग करता है उसकी इन्द्रियां व शरीर के अन्य उपकरण, हृदय, पाचन-तन्त्र यकृत-प्लीहा-लीवर-किडनी आदि प्रभावित होकर विकारों आदि से ग्रसित होकर रुग्ण हो जाते हैं। होना तो यह चाहिये कि हम तप, पुरूषार्थ, श्रम, योगासन, हितकर शाकाहारी भक्ष्य श्रेणी का भोजन, अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा व पूर्णतया त्याग, स्वाध्याय, ध्यान व चिन्तन पर अधिक ध्यान दें जिससे हमारा शरीर स्वस्थ व सुखी रहे। वायु व जल प्रदूषण को रोकने के लिए हमारे पूर्वजों ऋषियों ने एक ऐसी अनोखी नित्यकर्म विधि बनाई जो सारी दुनिया में अपनी मिसाल स्वयं ही है। इसके लिए उन्होंने वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ गोघृत, स्वास्थ्यवर्धक वनस्पतियों, औषधियों, सुगन्धित व पुष्टिकारक पदार्थो से दैनिक अग्निहोत्र का विधान किया। इस अग्निहोत्र को करने से सभी पदार्थ अग्नि के संसर्ग से सूक्ष्म होकर वायु मण्डल में फैल जाते हैं। वायुमण्डल में वायु के प्रदूषणयुक्त अणु-परमाणु से मिलकर प्रदूषण के प्रभाव को समाप्त करते थे। इससे वायुमण्डल अपनी आदर्श स्थिति-संरचना-compositon में रहता था। इस प्रकार यज्ञ से उत्पन्न वायु-गैस-सूक्ष्मकणों के वायुमण्उल में चहुंदिश फैलाव से दूर-दूर तक का वायुमण्डल शुद्ध व पवित्र व रोगकृमि रहित हो जाता था। वर्षा होने पर वह यज्ञ के परमाणु-अणु व कण हमारी भूमि पर आते थे जो नाना प्रकार की वनस्पतियों, अन्न, पुष्पों व सभी प्रकार की औषधियों की गुणवत्ता में वृद्धि value edition करते थे। हम यह भी अनुभव करते हैं कि यज्ञ के प्रभाव का वनस्पति व समस्त प्राणी जगत पर अध्ययन व परीक्षण कर उससे होने वाले अच्छे प्रभाव पर अनुसंधान की आवश्यकता है। हम समझते है कि ऐसा अनुसंधान कोई वेद ज्ञानी, योगाभ्यासी व आधुनिक वनस्पति विज्ञान सहित सभी विषयों के वैज्ञानिकों का समूह करें, तो उससे मानव व प्राणी जगत के लिए लाभप्रद अनेक नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ सकता है और तब अग्निहोत्र यज्ञ की महत्ता व उपयोगिता और अधिक समझ में आ सकती है। यह तो निश्चित है कि वायु व जल का वनस्पतियों से गहरा सम्बन्ध है। यज्ञ से वायु मण्डल में जो गुणात्मक परिवर्तन होता है, उसका वनस्पतियों पर भी प्रभाव तो होगा ही। मनुष्यों द्वारा यह प्रभाव एक रूप में नासिका से सुगन्ध के ग्रहण द्वारा प्राप्त ाहोत है। यज्ञ व अग्निहोत्र की यह सुगन्ध आरोग्यकारी होने के साथ फूलों की सुगन्ध से अधिक प्रभावकारी होती है। अब क्योंकि यज्ञ में वनस्पतियां, औषधियां, गोधृत व शक्कर आदि मीठे व पौष्टिक अनेक पदार्थ भी डाले गये हें, तो उनका प्रभाव भी मानव शरीर व जीवन पर निश्चित रूप से होगा। इस प्रभाव को वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध करने व जानने

के लिए यज्ञ-प्रेमियों को प्रयास करना चाहिये। इस सन्दर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि हमने विदेशी पाश्चात्य संस्कार इतने अधिक ले लिए हैं कि वायु व वृष्टि के संशोधक अपने प्राचीन जीवनोपयोगी क्रिया-कलापों, कर्मकाण्डों व विधि-विधानों को तिलांजलि दे रख ी है। उन पर विचार ही न करना हमारी घातक सोच है। आज हमारा वायु मण्डल अत्यधिक अशुद्ध है जिसका कारण उद्योगों से उत्पन्न धुएं, वाहनों में ईंधन के जलने से निकलने वाली हानिकारक गैसों तथा वृक्षों की कमी आदि हैं। इसी प्रकार से उद्योगों मुं अनुपयोगी पदार्थों व घरेलू अनावश्यक पदार्थों को जल में डाल कर बहा दिया जाता है जिससे वायु व जल दोनों प्रदूषित हो गये हैं इनका सुधार तो हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करके व विज्ञान की सहायता से कर सकते हैं। अधिक संख्या में वृक्षारोपण कर भी समस्या को कुछ-कुछ कम किया जा सकता है। सरकार के साथ नागरिकों को अपना कर्तव्य पालन करना आवश्यक है।

आज सारा विश्व पश्चिम जगत के वैज्ञानिक व औद्योगिक उत्पादों के कुचक्र में फंसकर अपने स्वाभाविक व नैसर्गिक जीवन तथा धर्म-कर्म को भूल कर एवं उसे छोड़कर प्रकृति का अधिक से अधिक दोहन व उससे उपलब्ध साधनों के उपभोग को ही जीवन की सफलता का पर्याय मान रहा है। इससे समाज में नाना प्रकार के रोग व दुःख उत्पन्न होकर मनुष्यादि प्राणी अल्पायु में अकाल मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। विवेकहीन होने के कारण इसका प्रमुख कारण आवश्यकता से अधिक व अनेक अनुपयोगी प्रकार के भाग-पदार्थ जिसमें भव्य निवास, मोटर-गाड़ी, खर्चीले स्कूलों की पाश्चात्य मूलय प्रधान शिक्षा, पुरूषार्थ रहित आरामदायक जीवन, बड़े बैंक बैलेन्स के साथ साथ असमय का भोजन व खाना-पीना, अनियमित सोना-जागना, असन्तुलिक व सीमा से अधिक दूरदर्शन, मोबाइल का प्रयोग जिसका प्रभाव आंखों, कानों, मन, मस्तिष्क व शरीर के यन्त्र-तन्त्र पर प्रतिकूल रूप पड़ रहा हैं इनसे जीवन में होने वाले हानिकारक प्रभाव को पीड़ित व उसके परिवार वाले जान ही नहीं पाते हैं। डाक्टर आदि इस पर कुछ कम ही बताते हैं। हम समझते हैं कि जीवन को स्वस्थ व प्रसन्न रखने के लिए प्रातः 4 से 5 बजे की बीच उठना व रात्रि 10 बजे तक सो जाना, योगासन व व्यायाम करना, शरीर को स्नान आदि से स्वच्छ रखना, त्वचा पर किसी प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयाग न करना व केवल हर्बल प्रसाधनों का बहुत अल्प मात्रा में प्रयोग करना, अल्पमात्रा में शुद्ध व शाकाहारी पौष्टिक भोजन जिसमें पौष्टिक अन्न से बनी चपाती, चावल, दालें, हरी तरकारियां, दूध दही, मट्ठा, सभी प्रकार के स्वास्थ्यवर्धक फल, बादाम, काजू, पिस्ता आदि हों, समय पर लेना या करना चाहिये। अग्निहोत्र यज्ञ से हमारे घरों का वातावरण भी पूर्ण शुद्ध रहना चाहिये, हमें अपने विचार भी शुद्ध व पवित्र रखने चाहिये जिसके लिए हमें वेद के विधान के अनुसार ईश्वरोपासना-संन्ध्या आदि भी करनी चाहिये। यदि ऐसा करेंगे तभी हम स्वस्थ रह सकते हैं। अन्यथा रोगों का आक्रमण आयु की किसी भी स्थिति व अवस्था में हो सकता है।

हमारा पर्यावरण मुख्यतः पृथिवी, जल, वायु व आकाश का समूह है। हमारा भोज्य-अन्न शुद्ध भूमि में शुद्ध प्राकृतिक खाद व पानी से उत्पन्न होना चाहिये। आज कल खेतों में प्रयोग किये जाने वाले रसायनिक खाद व कीटनाशकों का छिड़काव भी हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ने व असाध्य रोगों को उत्पन्न करने का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ है। देश भर में एक मिथ्या-विश्वास पैदा हो गया है कि रासायनिक खाद व कृत्रिम कीटनाशकों के छिड़काव से पैदावार अधिक होती है। वास्तविकता यह है कि हम प्राकृतिक खादों और कीटनाशकों से भी वही परिणाम प्राप्त कर सकते हैं और रोगों से बच सकते हैं। यद्यपि बुद्धिमान व विद्वानों को इस विषय से सम्बन्धित तथ्यों का ज्ञान है परन्तु कुछ विशेष कार्य

होता दिखाई नहीं दे रहा है। रासायनिक खाद आदि के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले अन्न से असाध्य रोगों में कैंसर, हृदय व मधुमेह आदि अनेक भयंकर रोग सम्मिलित हैं। बड़े व छोटे नगरों तथा ग्रामों तक कृत्रिम प्रकार का विषैला दूध, दही व धृत का प्रतिदिन विक्रय हो रहा है। आजकल मुनाफाखोरी के चक्कर में सब्जियों व फलों में विषैले इंजेक्शन लगाकर उनका आकार अल्प-समय में बढ़ा दिया जाता है। इससे एक ओर कुछ थोड़े से समाज विरोधी लोग मालामाल हो रहे हैं तो दूसरी और असंख्य लोग रोगों का शिकार होकर असमय मृत्यु का ग्रास बन रहे हैं। समाज के शत्रु धन के लिए ऐसे घिनौने काम करते हैं जिन्हें सरकारी तन्त्र के लोभ की प्रकृति वाले कर्मियों से सहयोग प्राप्त होता हैं यह बहुत ही चिन्ताजनक व स्वाधीन देश के लिए अपमानजनक है। हमें लगता है कि हमारी व्यवस्था के संचालकों को लोगों की अनुचित व बुरी प्रवृत्ति का न तो पूरी तरह से ज्ञान है और उसे समाप्त करने में उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति ही दृष्टिगोचर होती है। भगवान भरोसे ही आज का मनुष्य ऐसी विपरीत परिस्थिति में जीवित है। अतः आवश्यकता है कि बाजार से खरीदी जाने वाली प्रत्येक वस्तु को लेने से पूर्व ग्राहक द्वारा उसकी शुद्धता पूरी परीक्षा हो अथवा संदिग्ध वस्तुओं का प्रयोग ही न किया जाये व अत्यल्प मात्रा में करें। बुद्धिमान लोग जानते हैं कि इन समाज विरोधी कार्य में अशिक्षा व चारित्रिक गिरावट के साथ शीघ्र अधिक धन बटोरने का मनोविज्ञान काम करता है। इनका निवारण करना शिक्षा व समाज शास्त्रियों के साथ सरकार का काम है। यदि सरकारी मशीनरी ठीक काम करे और हमारी दण्ड व्यवस्था चुस्त-दुरूस्त हो तो परिणाम कुछ अच्छे हो सकते हैं।

हमारे पशु, पक्षी व सभी मनुष्येतर प्राणी भी हमारी सृष्टि ओर पर्यावरण का अंग है। ईश्वर ने, जिसे हमारे नास्तिक बन्धु अज्ञान, हठ व दुराग्रह से 'प्रकृति' कहते हैं, मनुष्य को शाकाहारी प्राणी बनाया है। मनुष्यों के दांतों की बनावट शाकाहारी प्राणियों के समान है। मांसाहारी प्राणियों के दांतों की बनावट व आकृति शाकाहारी प्राणियों से अलग प्रकार की होती हैं मनुष्य की भोजन पचाने की प्रणाली भी शाकाहारी प्राणियों के समान है। शाकाहारी पशु अपनी सारी आयु स्वस्थ व सुखी रहते हुए व्यतीत करते हैं। उनके सामने सामिष वस्तुएं या भोजन रखा भी जाये तो भी वह उसका प्रयोग नहीं करते। इसी प्रकार ऐसे लाखों निरामिष भोजी लोग हैं जिन्होंने अपने पूरे जीवन किसी सामिष पदार्थ का भक्षण नहीं किया और 80 व 100 वर्ष के बीच की आयु में भी पूर्ण स्वस्थ हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य स्वभावतः सामिष भोजी नहीं है। सामिष-भोजी मनुष्यों की प्रकृति, स्वभाव, जीवन, स्वास्थ्य, चरित्र, मन व बुद्धि, काम की प्रवृत्ति यह सभी मांसाहार व मदिरापान आदि से कुप्रभावित होती है। सामिष भोजन करना व मूक प्राणियों को किसी भी प्रकार से दुःख देना ईश्वर व प्रकृति के प्रति जघन्य अपराध है जिसका दण्ड, न कम न अधिक, तो ईश्वर से समय आने पर मिलता ही हैं अतः "जिओ व जीने दो" के सिद्धान्त का पालन प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। इस सिद्धान्त में अहिंसा तो है ही साथ में यह सृष्टि व प्रकृति को मानव जीवन के प्रति अधिक उपयोगी व सहयोगी बनाता है और मानव जीवन को सुखी, स्वस्थ व निरोग रखता हैं

अब यह निश्चित हो गया है कि कृत्रिम रासायनिक खाद से हमारी कृषि भूमि की उर्वरा शक्ति अर्थात् अन्न उत्पादन की शक्ति व सामर्थ्य धीरे-धीरे कम व नष्ट होती है और जो अन्न प्राप्त होता है वह शरीर पोषण कम करता है और साथ ही अनेक असाध्य रोग उत्पन्न कर जीवन को समय से पूर्व मृत्यु का ग्रास बनाता है। अतः कृत्रिम खादों का प्रयोग समाप्त कर और प्राकृतिक खाद का प्रयोग बढ़ाने के लिए योजनायें बनायी जानी

चाहिये। कृति नीति की समीक्षा कर ऐसे उपाय करने चाहिये जिससे आज के युवा कृषि व कृषि कार्यों में अपना व्यवसाय चुनें। करने से क्या नहीं होता। यदि ऐसा करेंगे तब ही हमें स्वास्थ्यप्रद अन्न वा भोजन प्राप्त हो सकेगा अन्यथा विनाश व अन्धकार हमारे सामने उपस्थित है। दोनों में एक को ही चुना जा सकता है। इस क्षेत्र में जागरण इस प्रकार का होना चाहिये कि हमारे राजनैतिक व सरकारी लोग किन्हीं आर्थिक व अन्य कारणों से हमारे स्वास्थ्य से खिलवाड़ न कर सके।

आजकल हमारे देश में लोगों के पास जो धन व सुख की सामग्री है उसमें भारी असमानता व अन्तर है। कुछ लोगों के पास अथाह धन व सुख के साधन हैं तो कुछ के पास जीने के लिए दो समय का भोजन भी नहीं है। करोड़ों लोग बिना पर्याप्त भोजन, शिक्षा व सुख-सुविधाओं के अपना जीवनयापन करते हैं। रोग होने पर ऐसे लोग बिना उपचार के मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। यद्यपि हमारे चिकित्सकों द्वारा चिकित्सक बनने पर यह शपथ ली जाती है कि वह हर रोग का उपचार करेंगे परन्तु फिर भी आम आदमी डॉक्टरों के पास जाने की हिम्मत नहीं कर पाता। आम आदमी को क्या आज मध्यम श्रेणी का व्यक्ति भी डॉक्टर के पास किसी छोटी से छोटी बीमारी का उपचार कराने के लिए जाते समय डराता है कि कहीं लेने के देने न पड़ जायें। आज चिकित्सा के नाम कुछ लोग लूट करते हैं। अनावश्यक महंगे टैस्ट कराये जाते हैं, चाहे रोगी का सामर्थ्य हो या न हो। महंगी दवायें लिखी जाती है जिसका एक कारण इसमें कमीशन का लिया जाना भी होता है। इसमें कुछ सत्यता तो है ही। इसके अनेक उदाहरण भी सामने आ चुके हैं। यह एक प्रकार का चारित्रिक प्रदूषण है जो कि समाज व मनुष्य के अस्तित्व के लिए अत्यन्त हानिकारक है। इसे बढ़ने नहीं देना चाहिये अन्यथा यह मनुष्य में दया, करुणा, प्रेम, ममता, संवेदना आदि सभी कुछ समाप्त कर समाज के प्रत्येक मनुष्य को दूसरे के भोग की वस्तु बना कर रख देगा। हमने ऐसी सत्य घटनायें सुनी, पढ़ी व जानी हैं जब चिकित्सक ने रोगी को बिना बतायें उसकी किडनी निकाल ली और असत्यता कह कर उसे समझाया गया कि उसके जीवन की रक्षा के लिए आपरेशन करना पड़ा। वह समय-समय पर दवा लेता रहे। यह घोर चारित्रिक पतन का प्रमाण है एवं चारित्रिक प्रदूषण का उदाहरण है। यह सब समाज में चलता है क्योंकि हमारी दण्ड व्यवस्था में ऐसे अपराधियों को पकड़ने और शीघ्र दण्ड देने में समस्या है। चारित्रिक प्रदूषण के उदाहरण सभी व्यवसायों में देखने में आते हैं। यह सब आधुनिक शिक्षा की कमियों को उजागर करता है और उसे कलंकित करता है। ऐसा भी लगता है कि आधुनिक शिक्षा भ्रष्टाचार की पोषक है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मुख्यतः चारित्रिक व नैतिक दृष्टि से संस्कारित व चरित्रवान नागरिक उत्पन्न करना है। व्यवस्था में कमियां तो स्वीकार करनी ही पड़ेंगी। परन्तु दुःख इस बात का है कि इस रोग को अभी पहचाना ही नहीं गया है, उपचार कब होगा, होगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

अतः पर्यावरण की सुरक्षा व उसके खतरों का जब उल्लेख होता है तो उसे सभी पहलुओं से देखना उचित है। रोग पता होने पर ही समाधान हो सकता है। समाधान तभी होगा जब हममें रोग को रोग कहने व उसका उपचार करने की दृढ़ इच्छा शक्ति होगी। कोई भी कार्य असम्भव नहीं होता। असम्भव वहीं होता है जहां इच्छा शक्ति कमजोर होती है। आज अनेक मनुष्य पर्यावरण का शत्रु बने हुये हैं। शत्रुता को छोड़कर सभी को प्रकृति को अपना मित्र बनाना चाहिये और उसके साथ मित्र का का व्यवहार करना चाहिये, इसी में सबकी भलाई है।

❑❑

यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में सोम

(महात्मा चैतन्यमुनि)

सोम के रहस्यों से अनभिज्ञ लोगों द्वारा बहुत जोर-शोर से प्रचारित किया जाता है कि सोमरस शराब जैसा कोई नशीला पदार्थ हुआ करता था, जिसे इन्द्र देवता तथा वैदिक ऋषि पीया करते थे। यदि हम सोम को सही-सही परिप्रेक्ष्य में देखें व समझें तो इस प्रकार की कल्पनाएँ एकदम निराधार हो जाती है। यदि हम सोम को पीने या खाने की बात भी करें तो सुश्रुत के अनुसार उसे कूट-छानकर उससे रस निकाला जाता है। फिर उसे दूध, दही तथा मधु आदि के साथ सेवन करना बताया गया है। विधिवत् इसके निर्माण की विधि बताई गई है तथा यज्ञ में सोम को आहुत करने की बात भी कही गई है। श्रेष्ठतमम् कर्म यज्ञ में इस प्रकार के नशीले पदार्थों को आहुत करने की कल्पना ही अनर्गल एवं निन्दनीय है। वेद में कहीं पर भी इस प्रकार के मद्य आदि नशीले पदार्थों का सेवन करने की बात नहीं कही गई है बल्कि वेद में मद्य का निषेध किया गया है-**हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते।** (ऋ.8/2/12) शराब को पीने वाले दुष्ट लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं और नंगे होकर व्यर्थ बड़बड़ाते हैं, इसलिए मद्यपान बुरा है। अथर्ववेद (20/114/2) में भी कहा गया है कि सुरा पीने वाले लोग विनष्ट हो जाते हैं। ऐसा ही सामवेद (6/2/4) उत्तरार्चिका में भी कहा गया है। आगे हम यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों को देकर विद्वानों द्वारा उन पर किए गए भाष्य के माध्यम से सोम पर चिन्तन कर रहे हैं। यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर दें कि यास्काचार्य जी के अनुसार शब्द तीन प्रकार के होते हैं- यौगिक, रूढ़ तथा योगरूढ़। इसी आधार पर विद्वानों ने प्रसंगानुसार अपने-अपने भाष्य में सोम के अर्थ किए हैं।

यजुर्वेद में अनेक स्थानों पर सोम आया है, जिनमें से कुछ मन्त्रों के पते देकर हम पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा किए गए अर्थ दे रहे हैं। (3-28, 56) पण्डित हरिशरण सिद्धज्ञतालंकारजी- शिष्य आचार्य से कहता है कि आप मुझे सोम, स्वरण व कक्षीवान् बनाइए। शान्त प्रभो अर्थ भी किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी-सोमानम्-औषधियों का रस, विद्या की सिद्धि करने वाला। (56) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला जगदीश्वर। (5-1) पण्डित हरिशरण सिद्धानलंकारजी-वीर्यशक्ति। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी-जगत् उत्पन्न करने वाला जगदीश्वर। (5-1) पण्डित हरिशण सिद्धानतालंकारजी-वीर्य-शक्ति। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी-जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समूह। (7-2, 4, 21) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - शान्तमय प्रभो। शरीर के अन्दर जलों व औषधियों से उत्पन्न वीर्य 'ज्ञान-बल-ऐश्वर्य' को बढ़ाने वाला होता है। यह शरीर व मस्तिष्क दोनों को सुन्दर बनाता हुआ सब दिव्य गुणों को प्राप्त कराता है। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी-शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वान् तथा सोमाय का- ऐश्वर्य की प्राप्ति (4) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य (21) सौम्यगुण सम्पन्न राजा। (8-9, 10,11,39, 49 व 50) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - दिव्यगुणों वाले तथा उत्पादक शक्ति से युक्त पति, शक्ति का सम्पादन करने वाले, सोम का पान करने वाले, वीर्य-शक्ति, शक्तिशाली, शक्ति व शांति के पुंज। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी - ऐश्वर्यसम्पन्न, सोमवली आदि औषधियाँ,

सोमगुण सम्पन्न। (9-19,23,26) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - वीर्य शक्ति, सौम्य, गुणयुक्त अथवा सोम-शक्ति सम्पन्न राजा, गुण सम्पन्न। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी - सोमवल्ली आदि औषधि, चन्द्रमा, शान्तगुण-सम्पन्न। (10-5,15,17,18,23,30) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - शक्ति के पुंज, चन्द्रमा, शान्त प्रभु, सौम्य-स्वभाव, सोम देवता। महर्षि दयानन्द सरस्वती - ऐश्वर्य, चन्द्रमा, शुभ-गुण, सोमलता आदि औषधि। (12-22, 29) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - वीर्य-शक्ति। महर्षि दयानन्द सरस्वती- औषध व ऐश्वर्य। (19-1 से 5,7,15,25,32 से 35,37,49 से 54,57,58,61,72,74,75) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी -शक्ति का पुंज, अत्यन्त विनीत, सोम शारीरिक रोगों को दूर करता है, आत्मशक्ति देता है, ज्ञान में वृद्धि करता है और परमात्मा प्राप्ति का साधन बनता है। अंग-प्रत्यंग को सबल बनाता है। हर्ष प्रदान करता है। जीवन को दीप्त करता है। सौम्य एवं शान्त स्वभाव। सोम हममें यज्ञ-वृत्ति तथा सत्यवृत्ति उत्पन्न करता है। आसुरी-वृत्ति को दूर करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती - ऐश्वर्ययुक्त, प्रेरणा करने हारा विद्वान्, सोमलता आदि औषधियाँ, औषधियों का रस, औषधि, ऐश्वर्य, अंशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेदवाला सोम, ऐश्वर्य व चन्द्रमा, शान्त्यादि गुण। (20-27,59,90) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - सोम उल्लास देता है। रोगों से रक्षा करता है। औषधियों का सारभूत वीर्य। महर्षि दयानन्द सरस्वती - ऐश्वर्य, सोमलता औषधि।

(21-14) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - वीर्य शक्ति उत्कृष्ट बनाती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती - ऐश्वर्यवान्। (21-58,59) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - सोमतत्व, वीर्यरक्षण से आत्मनियन्त्रण। महर्षि दयानन्द सरस्वती - सोमम्-चन्द्रमा तथा सुरासोमान् का अर्थ उत्तम रस किया है। (22-6) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - शान्त व सौम्य जीवन। महर्षि दयानन्द सरस्वती - औषधि। (23-14,64) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी -सोमरक्षक जीवन में अग्रणी बना रहता है तथा उसे प्रभु की प्राप्ति होती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती - औषधि, ऐश्वर्य। (26-4) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - प्रभु प्राप्ति हेतु वीर्य रक्षा करनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती - सोमवल्ली आदि औषधियां। (27-30) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - सोमरक्षण से शरीर स्वस्थ होता है तथा प्रभु-प्राप्ति होती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती - उत्तम औषधियों का रस। (28-26) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - अत्यन्त शान्त। महर्षि दयानन्द सरस्वती - सोमादि औषधिगण। (29-49) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - विनीत शान्त स्वभाव वाला आचार्य। महर्षि दयानन्द सरस्वती - उत्तम औषधि। (33-25) पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी - आनन्द प्रदान करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती - सौमादि औषधियाँ।

सामवेद में सोम से सम्बन्धित बहुत से मन्त्र आए हैं जिनमें से कुछ की क्रमसंख्या हम आगे दे रहे हैं तथा साथ ही अन्त में पण्डित हरिशरण सिद्धान्तलंकार, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक 'विद्यामार्तन्ड', आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री तथा पण्डित तुलसीराम स्वामीजी द्वारा किए गए अर्थ भी दे रहे हैं ताकि स्पष्ट हो सके कि वास्तव में सामवेद में किन-किन अर्थों में सोम आया है। (154 156 159 180 191 212 213 245 306 386 392 398 402 427 429 430 432 436 501 503 504 से 507 510 से 521 525 527 531 से 533 542 546 से 548 559 561 562 567 571 572 573 577 578 582 675 687 689 692 695 699 716 725 741 746 757 766 767 769 775 777 781 788 789 793 808 818 819 821 834 856 859 860 861 871 872 874 888 895 897 910 922

923 926 927 940 943 954 955 से 957 959 961 967 970 972 974 975 977 981 988 993 से 998 999 1001 1006 1009 1010 1033 0134 1036 1037 1041 1047 1048 1049 1050 1053 1061 1080 1088 1093 1101 1102 1119 1121 1163 1175 1176 1180 1186 1187 1189 1196 1197 1198 1199 1200 1204 1213 1225 1227 1230 1236 1240 1242 1248 1254 1281 1288 1291 1292 1296 1313 1316 1323 1326 1331 1337 1346 1354 1357 1359 1366 1367 1369 1372 1384 1391 1427 1435 से 1439 तक के मन्त्रों का देवता पावमान सोम है। यहाँ पर शान्त प्रभो, चन्द्रमा जिससे औषधियों में रस पैदा होता है अर्थ किया है, 1441 1442 1444 से 1449 का देवता भी पावमान सोम है। 1471 से 1473 का देवता भी पावमान सोम है। 1486 1506 1640 1643 1657 1662 1678 1679 1689 1690 1699 1767 1785 1792 1827 1851 1856 1870)।

उपरोक्त मन्त्रों में सोम शब्द आया है तथा पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकारजी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है, सौम्यता, वीर्य, सोमपान अर्थात् वीर्यरक्षण, वीर्य-शक्ति परमात्मा, सौम्य स्वभाव वाला, विनीत स्वभाव, शक्ति व सौम्यता का पुंज, निर्माण करने वाले, शक्ति, शक्ति-कण, सर्वशक्तिमान्, परमात्मा, ज्ञानस्वरूप परमात्मा, सोमपान के लिए अर्थात् वीर्यरक्षा, सौम्य एवं विनीत स्वभाव, सकल ब्रह्माण्ड के उत्पादक प्रभो, उत्तम प्रेरणा देने वाले प्रभो, ज्ञानवान् प्रभो, सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाले प्रभो, सकल ऐश्वर्यों के उत्पादक प्रभो, वीर्य रक्षण, शक्ति का पुंज, शान्त एवं सौम्य स्वभाव वाले, शान्तस्वरूप परमात्मा, ऐश्वर्यशाली प्रभो, ऐश्वर्य के पुंज प्रभो। मन्त्र (1009) में शरीर में उत्पन्न सोम को 'अन्धः' कहा है क्योंकि यह आध्यायनीय-अत्यन्त ध्यान देने योग्य होता है। (1010) में मधोःरसम् अर्थात् मधु का पुंज। (1435 से 1439) मन्त्रों का देवता पावमान सोम है। यहाँ पर शान्त प्रभो, चन्द्रमा जिससे औषधियों में रस पैदा होता है, ऐसा अर्थ किया है। (1444 से 1449) का देवता भी पावमान सोम है। (1471 से 1473) का देवता भी पावमान सोम है। ऐश्वर्य को जन्म देने वाला परमात्मा, उल्लास, विनीत पुरुष।

अथर्ववेद में भी बहुत से मन्त्रों में सोम आया है जिनमें से कुछ के पते देकर हम पण्डित हरिशण सिद्धान्तालंकार, पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी तथा वातवेलकरजी द्वारा किए अर्थ दे रहे हैं। अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के पांचवें सूक्त का देवता सोम-पर्णमणि है। पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार जी ने यहां पर भी सोम का पालक व पूरक तथा वानस्पतिक पदार्थों से उत्पन्न मणि अर्थात् मुख्यतः वीर्य शक्ति के रूप में ही वर्णन किया है। (3-15-6, 3-16-1) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार - सौम्यता का भाव। क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने चन्द्र तथा ऐश्वर्य अर्थ किया है। (3-20-4) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार - शरीर में शक्ति को रक्षित करना। क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने ऐश्वर्य अर्थ किया है। (3-22-1) में सोम शब्द नहीं है मगर मन्त्र के अर्थ में प्रसंगानुसार पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार तथा क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी ने सोम आदि औषधियां अर्थ किया है। (6-15-3) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार तथा सातवेलकर जी ने औषधियों में उत्तम अर्थ किया है। (8-1-17) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार - औषधियों का श्रखक। श्री दामोदर सातवेलकर जी ने अर्थ किया है 'सोम जिनका राजा है, ऐसी औषधियाँ।' (8-4-1,2,5,6,9,13,19,25) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार - सौम्यता, सौम्य स्वभाव न्यायाधीश,

विनीत पुरूष, शान्त प्रभु, वीर्य-शक्ति। श्री दामोदर सातवेलकर जी ने अर्थ किया है - इन्द्रासोमा अर्थात् इन्द्र और सोम, सोम दुष्टों को सांप के लिए सौंप देते हैं, सोम पाप को कभी सहाय नहीं करता, सोम द्वारा तीक्ष्ण किए हुए शस्त्र को नियम से प्रेरित कर। (8-5-5,22) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार - वीर्य। श्री दामोदर सातवेलकर जी ने अर्थ किया है- 22 सोमरस पीने वाला। (8-10-14) पण्डित हरिशंकर सिद्धान्तालंकार -सौम्य स्वभाव। श्री दामोदर सोतवेलकर जी ने अर्थ किया है - उसका सोम राजा बछड़ा था।

महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्यों में सोम का निवर्चन मुख्य रूप से तीन धतुओं से किया है। सु (पु षुञ् अभिषवे स्वादि.) से प्रायः औषध, सोमलता के समान आह्लादक आसव, रोगनाशक महोषधि (सोम) का रस, सोमलता के समान सब रोगों (कष्टों) के नाशक राजादि अर्थ सोम के लिए किए गए हैं। (वैद्यकशिल्पक्रियाया संसाधित औषधीरसः (ऋ.1-47-1), सोमवल्लयादि निष्पन्नमाह्लादकमासवविशेषं (वा.सं. 8-10), सर्वरोगनाशकं महैषधिरसम्-द्वितीया (ऋ. 3-53-6), सोमवल्लीय सर्वरोगविनाशक (राजन्)वा.सं.34-22) यास्क ने भी इसी धातु से निर्वचन करते हुए इसका अर्थ औषधि (सोम) किया है (औषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति। नि. 11-2)। सू (षु प्रेरणेतुदादि.) से सोम का अर्थ सबको शुभ कर्मो और गुणों की प्रेरणा देने वाला परमेश्वर अथवा विद्वान् किया गया है (शुभकर्मगुणेषु प्रेरक (परमेश्वर विद्वान् वा) ऋ. 1-91-3)। सु (षु प्रसवैश्वर्योः भ्वादि.) से सोम का अर्थ सारे चराचर को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर तथा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर दोनों ही हैं। (सुवति चराचरमं जगत्। वा. सं. 3-56, ऋ. 1-91-12)। सोमलता या उत्तम औषध के आह्लादक गुण को देखते हुए सम्भवतया महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ 'आनन्द' भी किया है। एक स्थल पर यजमान प्रतिज्ञा करता है कि मैं ईश्वर के उस सर्वत्र व्याप्त यज्ञ को आनन्द से हृदय में दृढ़ करता हूँ (इन्द्रस्य परमेश्वरस्य तं भजनीयं यज्ञं सोमेनानन्दन दृढ़ीकरोमि। वा. 1-1-4) भावना यह है कि यज्ञानुष्ठान् करते हुए मैं असुविधा नहीं अपितु आनन्द का अनुभव करता हूँ। महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में सोम के अर्थ जगदीश्वर, विद्वान्, मनुष्य, राजा, सेनाध्यक्ष, संन्यासी, वैद्य, सोम नामक औषधि, सोम औषधि का रस, सोम आदि औषधियों से बनाया आसव, आनन्दरस, वीररस आदि किए हैं।

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्रजाक 'विद्यामार्तण्ड' जी ने अपने भाष्यों में जीवन रस व ज्ञानमार्ग, उपासना रस, शान्तस्वरूप परमात्मा, मोक्षानन्द रस, अमृतपान-स्थान, सौम्य स्वभाव उपासक अर्थ किया है। आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी ने जीव, आनन्द, भोग्य पदार्थ, ऐश्वर्यकारी, परमेश्वर, आनन्दमय परमेश्वर, शान्तस्वरूप परमेश्वर, आत्मा, सोमरस, शान्त स्वभाव वाले, सूर्य, शान्त विचार वाला भक्तजन, ज्ञान प्राप्ति का स्थान, आत्मज्ञानी, सौम्य स्वभाव वाला, आत्मबल के रक्षक, सच्चा न्याय, गृहस्थ आश्रम, शास्त्र बोध, शास्त्रीय ज्ञान, उत्पन्न संसारी पदार्थ, ज्ञानी पुरुष, शरीर रक्षा, विद्वान् पुरुष, सोमलता आदि वनस्पति, वायु, पुरूष, प्राणी, आनन्दरस, बोध, वायु, उत्तम पदार्थो के रक्षक, संसार के भोग, ऐश्वर्य, ऐश्वर्य-शक्ति, संसार, शान्त गुण वाला आदि अर्थ किए हैं। पण्डित तुलसीराम स्वामी जी ने चन्द्रमा, सौम्य-भक्त, औषधि विशेष का रस, शान्तस्वरूप परमेश्वर, औषधि वा परमात्मा, सोमरस, अमृतस्वरूप परमेश्वर, सेवन किया हुआ परमेश्वर, परमात्मा रूपी अमृत, अमृत, औषधिरस, आत्मिकानन्द, सोमरस, सोमोषधि वा शान्तातम, प्रसिद्ध चौबीस प्रकार के सोम, औषधिराज, शान्तामृतस्वरूप परमात्मा, कोमल हृदय, शान्तिधाम, औषधिगण, सेना का प्रेरक आदि अर्थ किए हैं।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७ मई २०१४ Post in Delhi R.M.S ०१-०७/५/२०१४	**मई 2014**	रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14 लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४ Licenced to post without prepayment Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में........................

ग्राम........................

डा0 ....

जिला........................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिण्टर्स, १५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६